चलो तुम प्रेम डगर पे

ओशो के श्री चरणों में समर्पित

मा अमृत प्रिया

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिलाः सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

+91 7988229565
+91 7988969660
+91 7015800931

अनुक्रमांक

अध्याय	बाउल गीता की प्रथम पंक्ति	प्रवचन का शीर्षक	पृष्ठ संख्या
00	भूमिका	वेद और तंत्र के भी पार हैं बाउल	04
01	गुरू शु–भाब दैओ आमार मोने	जीवन के प्रति प्रीतिपूर्ण दृष्टिकोण	08
02	चेतोन थाकते लॉओ चिने	जो जागा सो योगी	16
03	शुद्धो प्रेमेर प्रेमी जे जॉन हॉय	अशुद्ध प्रेम और विशुद्ध प्रेम	22
04	ऐक दिन पारेर कौथा भाबलि ना रे	मानुष जन्म– एक स्वर्णिम अवसर	28
05	मोन रे, शामान्नो कि तारे पाय	विशुद्ध भक्ति से प्रभु मिलन	36
06	तारे धोरबो कि शाधोन	प्रभु की पुकार कैसे सुनें?	44
07	शुधू की आल्ला बोले डाकले तारे	अभी और यहीं है परमात्मा!	50
08	मानुष भौजोनेर कौथा जानाई तोरे	माटी के दीपक में चेतन की ज्योति	56
09	आए के जाबी ओ पारे	अज्ञात का आमंत्रण	62
10	दिल–दोरियार माझे उठछे	भीतर डूबने से प्रभु मिलन	68
11	किशेआर बोझाई मोन तोरे	मानुष–तन है सच्चा तीर्थ!	74
12	बाउलेर आउल कौथा बाउल बिना बोझे के	बाउल फकीर–प्रीति के शीतल शिखर	80
13	जे खोंजे मानुषे खोदा शेई तो बाउल	खुद में खुदा खोजा रे भाई!	86
14	गुरू प्रोति रोति कोई होलो	गुरु प्रोति रोति कोई होलो	92
15	जारे देखते चाय मोर पागोल मोन	मिलन की प्रगाढ़ता और विरह के आंसू	98
16	गुरूबोस्तु चिने ने ना	गुरु की महिमा कही न जाए...!	104
17	आकार कि निराकार साँई रब्बाना	तुझमें ही है छिपा खुदा	110
18	गुरू तैजे गोबिंदो, भौजे केहो पाय नाको	गुरु से मिले राम रतन धन	116
19	जान के मानुष बनो	अकर्ताभाव है मुक्तिद्वार!	122

परमगुरु ओशो के अमृत
वचनों से शुभारंभ...

वेद और तंत्र के भी पार हैं बाउल

ओशो ने 1976 में अंग्रेजी में बाउल फकीरों की वाणी पर प्रवचनमाला दी। शीर्षक रखा– दि बिलोवेड। बाउलों के लिए परमात्मा बिलोवेड है, प्रेमपात्र है। प्रेम की आंख से परमात्मा का दर्शन होता है। कोई दार्शनिक सिद्धांत काम नहीं आता। लेकिन दुनिया तो प्रेम को पागलपन समझती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है, मगर तथ्य ऐसा ही है कि अंधे लोग आंख वालों को अंधा कह रहे हैं। इसलिए समझदारों की इस दुनिया में नासमझ होने की तैयारी हो तो ही उस परम प्रीतम 'अधर मानुष' से मिला जा सकता है। मा ओशो प्रिया विगत एक वर्ष से आस्था चैनल पर बाउल संतों की अनूठी वाणी का माधुर्य बिखेर रहीं हैं। आगे भी करीब एक साल तक विभिन्न बाउल फकीरों पर प्रवचनमाला चलेगी।)

शब्द 'बाउल' संस्कृत के मूल 'वातुल' से आता है। इसका मतलब यह हैः पागल, हवा से प्रभावित, बावरा। बाउल कोई धर्म नहीं है। वह न तो हिंदू और न ही मुसलमान, न ईसाई और न ही बौद्ध है। वह एक साधारण इंसान है। वह किसी धर्म का नहीं, वह सिर्फ खुद का है। बाउल्स का विद्रोह ज़ेन मास्टर्स के विद्रोह से भी गहरा जाता है– क्योंकि कम से कम औपचारिक रूप से, वे बौद्ध धर्म के हैं, बाउल्स तो कुछ भी नहीं हैं– उनके पास कोई शास्त्र, जलाने के लिए तक नहीं हैं। चर्च नहीं, मंदिर–मस्जिद नहीं है– आकाश ही उनकी शरण है। एक गरीब आदमी– जिसके पास है सिर्फ एक छोटी सी रजाई, एक संगीत उपकरण और एक ढोल। वे तार–वाद्य और ढोल पर हाथों से खेलते हैं। नृत्य धर्म है, गायन पूजा है। वे इस्तेमाल नहीं करते 'भगवान' शब्द। भगवान के लिए बाउल शब्द है– अधर मानुष।

वे भिखारी, घुमक्कड़, खानाबदोष, हिप्पी, जिप्सी रहे हैं। एक गांव से दूसरे में भ्रमण करते, गीत गाकर, नृत्य करते हुए, अपने तरीके से अपनी जिंदगी जीते रहे हैं। बाउल विद्रोही व्यक्ति हैं, वे क्रांतिकारी भी नहीं हैं। भविष्य के लिए क्रांतिकारी की उम्मीद होती है। विद्रोही व्यक्ति कहते हैं, 'सही समय यहाँ है अब, और मैं किसी का इंतज़ार नहीं कर रहा हूँ, मैं अभी जीने जा रहा हूँ।'

एक विद्रोही आदमी वर्तमान में रहता है। क्रांतिकारी समाज के विरोध में होता है। विद्रोही आत्मा के पक्ष में होता है। क्रांतिकारी कहते हैं कि हम दुखी दुनिया में कैसे खुश रह सकते हैं? हम दुनिया को बदलेंगे। विद्रोही आत्म–रूपांतरण का प्रयास करता है।

उनका उपदेश कविता है। और उनकी कविता भी साधारण नहीं है, वे कोई प्रशिक्षित कवि नहीं हैं। काव्य एक छाया की तरह है, इसलिए अत्यंत सुंदर है। उनके नृत्य लगभग पागल जैसे हैं। वे कभी नृत्य में प्रशिक्षित नहीं किए गए हैं, नृत्य–कला के बारे में उन्हें कुछ भी

पता नहीं है। दीवानगी से भरे, एक तूफ़ान की तरह वे नाचते हैं। और वे बहुत सहज रहते हैं।

सहजता में हंसी आने लगे तो बाउल हंसता है, कभी रोना आए तो आंसू बहा लेता है। नाचने का भाव आया तो नाच लिया, गीत उठा तो गा लिया। नहीं उठा तो मौन में डूब गया। अधर मानुष का यही अर्थ है। कोई पूछे कि क्यों हंस रहे हो तो वह कहेगा– कोई कारण नहीं, तर्क नहीं, बस हंसी आ रही है। बाउल कर्मकांड के खिलाफ हैं। कर्मकांड असहज और मुर्दा होते हैं, उनमें प्राण नहीं होते। वे किसी की पूजा नहीं करते। उनका जीवन ही पूजा है। बाउलों का कोई संगठन नहीं है, क्योंकि संगठन में नियम–कानून आ जाते हैं। बाउल होना बिल्कुल निजी बात है। प्रेम सदा व्यक्तिगत ही होता है। प्रेम बगीचे जैसा नहीं, वन की तरह होता है।

यह अच्छा है कि वे जंगली है। यह अच्छा है कि कोई नक्शा नहीं है, अच्छा है कि कोई क्रियाकांडी धर्म नहीं है, सुपर हाइवे नहीं वरन पगडंडी है। अच्छा है कि काफी कुछ अभी भी अज्ञात है। अन्यथा, सभी आकर्षण खो जाएगा, सभी सौंदर्य खो जाएगा। यदि आश्चर्य खो दिया, जुनून गायब हो जाएगा। प्यार संभव नहीं होगा।

एक विद्रोही व्यक्ति वास्तव में किसी के खिलाफ नहीं होता है। वे मंदिर–मस्जिद के पास नहीं जाते हैं लेकिन वे हिन्दू–मुसलमानों के विरोधी नहीं हैं। वे केवल कहते हैं, 'कृपया मुझे अकेला छोड़ दो, हस्तक्षेप नहीं करो।'

विद्रोही मन की दृष्टि बहुत यथार्थवादी है। जीवन छोटा है। कोई नहीं जानता कि कल आएगा या नहीं आएगा। भविष्य में कुछ भी निश्चित नहीं है, केवल यह एक पल सत्य है। यह दूसरों के साथ लड़ाई में क्यों बर्बाद करें? यह दूसरों को समझाने की कोशिश में क्यों नष्ट करें? आनंद लें, खुशी में जिएं। बाउल्स, एपिकुरस या चार्वाक की भांति सुखवादी हैं। वे प्रसन्न रहते हैं। प्यार करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि बाउल मात्र भोगी हैं। वे निम्न को उच्च में बदलने की कीमिया जानते हैं। वे जानते हैं कि लोहे को सोने में बदलने के लिए क्या किया जाए। उन मस्तों के लिए प्यार पूजा है, प्यार प्रार्थना है, प्यार ध्यान है। बाउल का रास्ता प्यार का रास्ता है।

भारत में हैं दो परंपराएंः एक वेद की परंपरा है, दूसरी तंत्र की परंपरा है। वेद ज्यादा औपचारिक हैं, अनुष्ठानों पर उनका जोर है। नैतिक, शुद्धिवादी हैं। तंत्र गैर नैतिकतावादी, ज्यादा मानवीय, ज्यादा सांसारिक हैं। लेकिन तंत्र का मतलब है तकनीक। यह थोड़ा कठोर, अधिक वैज्ञानिक, तकनीकी है। बाउल्स दोनों के पार हैं। काव्यमय और अधिक कोमल हैं– गायन और नर्तन!

प्रेम प्यार से ही जाना जा सकता है। यह ऐसा कुछ राज है कि जिसे बौद्धिक चर्चा के द्वारा सुबोध नहीं किया जा सकता है। प्यार एक सिद्धांत नहीं है। यदि इसे एक सिद्धांत बनाने की कोशिश करो, तो समझ की पकड़ से बाहर छूट जाता है। अगर तुम नहीं जानते

तैरना, तो कोई उपाय नहीं इसके बारे में किताबें पढ़कर पता नहीं चलेगा कि यह क्या है। यह हर तरह से समझ के बाहर है। तुम्हें तैराकी सीखनी होगी। बाउल का दृष्टिकोण यह है कि अस्तित्व का रहस्य अस्तित्व के माध्यम से ही जाना जा सकता है। प्यार को प्यार से जाना जाता है।

किसी ने यीशु से पूछा, 'प्रार्थना करने के लिए समझाएं कि कैसे करें?' यीशु ने कहा, 'बस, प्रार्थना करो।' लेकिन उन्होंने कहा, 'यही तो हम पूछ रहे हैं कि हम नहीं जानते कि कैसे प्रार्थना करें? तो यीशु ने कहा, 'मैं अभी प्रार्थना करता हूँ। तुम मेरे साथ बैठो, तुम भी डूबने की कोशिश करो।'

एक खतरा है कि तुम्हें प्यार के बारे में बहुत कुछ पता चल सकता है, लेकिन 'प्यार के बारे में' पता होना 'प्यार' का पता होना नहीं है। वास्तव में ऐसा किताबी ज्ञानी अपने मानसिक ज्ञान में खो जाएगा। फिल्म अभिनेता, जो प्यार के व्यापार में हैं, हमेशा अपने प्रेम–जीवन में असफल होते हैं। यहां तक कि मर्लिन मुनरो ने अपने कैरियर के चरम शिखर पर पहुंचकर आत्महत्या कर ली। राष्ट्रपति केनेडी उसके प्रेम में था। लेकिन किसी भी तरह संतुष्ट नहीं हो सकी, उसका पूरा जीवन बिल्कुल खाली, रिक्त था।

क्या हुआ? प्यार के बारे में ज्यादा पता होना मदद नहीं करता। प्यार को प्यार से ही जाना जा सकता है। इसका मतलब है इस बारे में कुछ भी जाने बिना प्यार में डूबना है।

अज्ञात में उतरने के लिए साहस की जरूरत है। अंधेरे में जाना है। नक्शे का सहारा नहीं, किसी का साथ भी नहीं। बाउल्स बहुत साहसी लोग हैं।

(प्रवचन – 1)

जीवन के प्रति प्रीतिपूर्ण दृष्टिकोण

नमस्कार। प्रिय साधक–साधिकाओ, आज हम एक नए लोक में प्रवेश कर रहे हैं– साधना से हटकर प्रार्थना के आलोकित लोक में। बाउल फकीरों के संग अनूठे भावभरे काव्य की दुनिया में। इन मधुर गीतों को गुनगुनाते हुए प्रेम–पर्वतों की ऊंचाइयों पर चढ़ेंगे। भक्ति के उज्जवल, शीतल शिखरों को स्पर्श करेंगे। ओशो कहते हैं कि 'योग' साधना है, 'भक्ति' सिद्धि है। ध्यान उपाय है, उपचार है, औषधि है; प्रेम स्वास्थ्य है। अध्यात्म के जगत में यूं तो सभी धाराएं, सभी मार्ग और उन पर यात्रा करने वाले संत अद्वितीय होते हैं, किंतु बंगाल के बाउल उनमें भी बेमिशाल हैं। जीवन को ही परमात्मा जानने वाले, अनन्य प्रीति से ओतप्रोत, इन हृदयस्पर्शी गीतों का सिलसिला आज शुरु होता है, संत लालन की अमृत वाणी से–

गुरू शु–भाब दैओ आमार मोने,
तोमाय जैनो भूलिने।।
गुरू, तूभी निदौय जार प्रोति,
ओ तार शौदाय घौटे दूर्मोति।
तूभीं मौनोरौथेर शारोथी,
जौथा लौओ जाई शेखाने।।
गुरू तूमी तौन्त्रेर तोन्त्री,
गुरू तूमी मौन्त्रेर मोन्त्री।
गुरू तूमी जौन्त्रेर जोन्त्री,
ना बाजाओ बाजबे केने।।
आमार जौन्मो–औन्धो मोन–नौयोन,
गुरू तूमी नित्यो शौचेतौन।
चौरोन देखबो आशाय कौय लालोन,
ज्ञान–औंजोन दैओ नौयोने।।

परमगुरू ओशो ने सन् 1979 में बाउल संतों पर अंग्रेजी में प्रवचनमाला दी जिसका शीर्षक रखा– 'दि बिलोवेड', अर्थात् परम प्रेयसी। बाउलों के लिए परमात्मा प्रेमपात्र है। प्रेम की आंख से ही तो परमात्मा देखा जाता है। वस्तुतः प्रेम की आंख ही एक मात्र दृष्टि है जिससे प्रभु दर्शन होता है। ईश्वर कोई

दार्शनिक सिद्धांत नहीं है, गणित की पहेली भी नहीं, जो विचार से, तर्क से हल हो जाए। परमात्मा तो परम–प्रीति की अनुभूति है मगर दुनिया प्रेम को पागलपन समझती है। अंधे लोग आंख वालों को अंधा कहते हैं। प्रेम के परवाने दूसरों को भी परवाना बनाने की कोशिश करते हैं। मस्ती का स्वाद चखाने का प्रयास करते हैं–

मेरी दीवानगी पर ये होश वाले बहस फरमाएं
मगर पहले जरूरत है इन्हें दीवाना बनने की।

बाउलों को अगर समझना हो तो अपनी तथाकथित कठोर समझदारी उतारकर रख देनी होगी। नासमझ बनना होगा, प्रेमल, कोमल भावदशा में डूबना होगा। उस दीवानगी में ही बाउल गीतों की बरसात में भींगोगे। होशियारी का, ज्ञान का छाता दूर रख देना। तभी प्रीति की प्रतीति होगी, प्रभुकृपा में स्नान होगा। जीवन में एक तरह की ताजगी, रहस्य–अनुभति का अवतरण होगा। विस्मय–बोध की खिलावट में परमात्मा का अगमन होगा।

बाउल शब्द निकला है मूल संस्कृत शब्द 'बातूल' से। बातूल का अर्थ होता है दीवाना, भावभरा। बाउल सदा परमात्मा में भावमग्न रहता है, उसकी याद में मतवाला रहता है। वह तार्किक नहीं है, हार्दिक है। बौद्धिक नहीं है, भावुक है। इन गीतों की विवेचना में, व्याख्या में न पड़ना। इनका मधु–रस पीना। दिमाग से हटकर, दिल से इन्हें चखना।

एक प्यारी कहानी 'दि विलोवेड' प्रवचन श्रृंखला में ओशो ने सुनाई है कि एक बार किसी बाउल फकीर से कोई पंडित मिलने गया। उस प्रकांड विद्वान ने परमात्मा के बारे में क्लिष्ट दार्शनिक सिद्धांतों पर चर्चा करते हुए प्रश्न उठाए और कहा कि परमात्मा के बारे में तुम कुछ समझाओ। बाउल फकीर हंसने लगा। पंडित चौंका, इसमें हंसने की क्या बात है! फिर अपने कठिन सवाल रिपीट करके बोला कि कुछ तो कहो। हंसता हुआ फकीर मस्त होकर झूमने लगा। पंडित को लगा कि यह सिरफिरा–सा आदमी मेरी बात को गंभीरता से नहीं ले रहा है। स्थिति को 'सीरियस' बनाने के लिए उसने संस्कृत में दो–चार सैद्धांतिक श्लोक सुना दिए। तब तो फकीर खड़े होकर नाचने लगा। जितना पंडित गंभीर होता जाता है, बाउल का नृत्य उतना ही बढ़ता जाता है। वह तूफान की तरह नाचने लगता है– आंधी का बवंडर!

पंडित बोला– रुको, यह कैसी विचित्र हरकत? क्षमा करें, क्या आप मुझे उत्तर नहीं देंगे? बाउल ने कहा– उत्तर हीं तो दे रहा हूं। उस फकीर ने अपना इकतारा उठा लिया और गाते हुए कहा– हे पंडितजी, आपको प्रेम की बात कैसे बताऊं? मुझे लगता है कि जैसे बगीचे में कोई स्वर्णकार आ गया है, सोने को कसने वाली कसौटी लेकर। और फूलों को कसौटी के पत्थर पर रगड़–रगड़कर परख रहा है। फुलवारी की सुगंध और सौंदर्य के बारे में माली भला सुनार को कैसे समझाए? सुनार ने सारे फूल तोड़कर 'रिजेक्ट' कर दिए कि ये खरे नहीं हैं। ये नकली फूल हैं। मेरी हालत माली जैसी हो रही है। इसलिए हंसी आ रही है। मेरी हंसी से समझो। मेरे नृत्य की भावभंगिमा से कुछ पकड़ो। फकीर ने पंडित को सीने से लगाकर कहा– मित्र, यही मेरा जवाब है।

वाद–विवाद, तर्क की बात नहीं है, प्रेम की बात है। प्रेम में डूबने के लिए जो राजी हो जाएंगे वही बाउल हो जाएंगे– बावरे, मदमस्त। बाउल पूजा नहीं करते, क्योंकि उनका पूरा जीवन ही पूजा है। वे किसी सिद्धांत को नहीं मानते, कोई उनका संगठन नहीं है। क्योंकि अगर संगठन बनेगा तो फिर मस्तिष्क से नियम–सिद्धांत आदि बनेंगे। जबकि प्रेम तो बिल्कुल वैयक्तिक हृदय की बात है, वहां संस्था का क्या काम? प्रेम मनुष्य निर्मित बगीचे जैसा भी नहीं है, प्रेम तो नैसर्गिक वन की तरह है। बाउल की बातें प्राकृतिक जंगल की तरह हैं, माली द्वारा कांट–छांट किए गए उपवन की भांति नहीं हैं।

आज के बाउल गीत का जो भाव है, आइए उसे हृदयंगम करते हैं, भाव से गृहण करते हैं–

हे गुरुदेव मुझमें ऐसा भाव भरो कि मैं तुम्हें कभी न भूलूँ। आप जिनके प्रति दयादृष्टि रखते हो उनकी दुर्मति हट जाती है। तुम सभी मनोरथ को पूर्ण करने वाले हो। तुम मुझे जहां ले चलोगे, तुम्हारे साथ–साथ चलता चलूँ।

गुरु तुम सकल तंत्र के तंत्री हो। सभी मंत्रों के अधिष्ठाता हो। सकल यंत्र के ज्ञाता हो! मेरी हृदय वीणा में तान छेड़ो तभी तो मुझमें स्वर फूटेंगे। मैं जन्म से अंधा हूँ। गुरुवर, तुम सदा जाग्रत हो।

लालन कहते हैं ज्ञान रूपी काजल मेरे नयनों में लगा दो ताकि मैं तुम्हारे चरणों के दर्शन कर सकूँ।

गुरू हमारे मन में शुभ भाव जगा देता है, जो सत्यम शिवम सुंदरम से जोड़े। यह प्रार्थना लालन कर रहे हैं कि हे प्रभु! ऐसा शुभ भाव दें मेरे मन में कि हम तुम्हें कभी न भूलें। सदा तुम्हें याद रखें, ऐसा कुछ चमत्कार कर दें। हम एक आत्मिक व्याधि से ग्रसित हैं वह है आत्मविस्मरण की बीमारी। हम संसार में आकर, बहिर्मुखी होकर, भूल चुके हैं अपने–आपको। अपने उद्गम को भूल गए हैं। व्यर्थ का कूड़ा–कचरा याद है, सार्थक तत्व को, अपने मूल को भुला बैठे हैं। पृथ्वी का पूरा भूगोल–ज्ञान पता है, बस अपने घर का पता–ठिकाना मालूम नहीं।

स्वयं को जानते ही नहीं हैं, भूल गए हैं तो कैसे याद करें हम? जब हम गुरू को याद करते हैं तो उसी से हम स्वयं की याद में लौट आते हैं। इसलिए लालन कह रहे हैं कि गुरू हमारे भीतर ऐसा शुभ भाव भर दो कि हमेशा तुम्हारी याद में डूबा रहूं, प्रतिपल तेरी याद इस हृदय में बसी रहे। तीन तल होते हैं जीवन के, कर्म, विचार और भाव। शारीरिक कर्म का तल आत्मा से सर्वाधिक दूर है। मानसिक विचार का तल भी आत्मा से दूर है। लेकिन भाव का तल आत्मा के निकट है। घटना, करना, सोचना, भावना तथा चेतना; इन पांच को क्रमिक छोटे वर्तुलों की भांति देखें। सबसे बड़ी बाहरी परिधि है जगत में हो रही घटनाओं की। अधिकतम लोग वहां व्यस्त हैं। उसके अंदर घेरा है कृत्यों का। उससे छोटा भीतरी सर्किल है विचारों का। उसके भी अंदर है भावनाओं का वर्तुल। भावना के भीतर विराजमान है चेतना, आत्मा। और आत्मा का भी केन्द्र है परमात्मा, यानि परम+आत्मा, दि अल्टीमेट कांशियसनैश।

अगर हमें जीवन के मूलकेन्द्र की ओर गति करनी है, परमात्मा को पाना है तो पहले हमें भाव के तल पर आना होगा। उससे भूमिका बनेगी। हृदय की भूमि से आत्मा के आकाश में उड़ान, फिर परमात्म–दर्शन... सर्वत्र प्रभु की अनुभूति होगी। कर्मयोगी और ज्ञानयोगी क्रमशः देह एवं बुद्धि से यात्रा आरंभ करते हैं जो अति–दुर्गम हैं। भक्ति सुगम है, सहज है। बस जरा–सी छलांग– भावना से चेतना में!

हे प्रभु, जिसके ऊपर तुम्हारी दया नहीं है, जिसके ऊपर तुम कृपा नहीं करते हो उसके भीतर दुर्बद्धि पैदा हो जाती है। दुर्मति क्या है? आत्मविस्मरण ही कुमति है। हमारी सारी चेतना दूसरी की ओर भाग रही है। जो हमें अपने स्वभाव में लौटा दे, अपनी ओर प्रतिक्रमण करा दे, वह है सुमति।

मुझमें ऐसा भाव भरो कि तुम मुझे जहां ले चलोगे, तुम्हारे साथ–साथ चलता चलूँ। तुम सभी मनोरथ को पूर्ण करने वाले हो। अब तुम हमें जहां ले जाओगे हम वहीं जाने के लिए तैयार हैं। पूर्ण का अर्थ है पूरा। जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो लोग कहते हैं कि वह पूरा हो गया है, पूरा हो गया है यानि मिट गया, शून्य हो गया है। गुरू तुम मेरी मनोकामनाओं को शून्य कर देने वाले हो। पूर्ण कर देना अर्थात वासना से मुक्त कर देना। गुरू, तुम कामना–शून्य कर देने वाले हो। अब हम समर्पित हैं चाहे जहां ले जाओ। ऐसा भाव ही मन से मुक्ति बन जाता है। मन यानि मांग, कामना, मनोरथ, अपेक्षाएं। समर्पण यानि स्वयं को छोड़ दिया। नदी में बहते हुए तिनके की तरह हो गए। इसी में रूपांतरण घट जाता है।

समर्पण क्रांतिकारी घटना है। गुरू–चरणों में अपनी जीवन–नैया डाल दी, अब गुरू ही हमारा रास्ता तय करेंगे। सिर्फ अपने आपको छोड़ने की कला आनी चाहिए। अब गुरू की मर्जी हमारी मर्जी बन जाए। गुरू तुम तंत्र की तंत्री हो। तंत्र यानि विधियां। विधियां अपने आपमें निर्जीव हैं। मान लो झेन सद्गुरु डंडे का प्रयोग करते हैं तो उस डंडे के पीछे गुरू का ही हाथ तो है। जब तक गुरू है तब तक डंडा उपयोगी है, जिस दिन गुरू नहीं रहा तो डंडे का उपयोग भी नहीं रहेगा। विधि की जान गुरू है। गुरू तुम मंत्रों के अधिष्ठाता हो। मंत्र में कोई जान नहीं होती लेकिन गुरू मंत्रों में प्राण फूंकते हैं। गुरू मंत्र को चार्ज करता है, गुरू मंत्र से महामंत्र की ओर ले जाता है। वह जो भीतर निरंतर गूंज रहा है उस महामंत्र की ओर गतिमान करता है। गुरू के बिना तुम चाहे जितने मंत्रपाठ कर लो कुछ नहीं होने वाला है। बिना गुरू के कोई मंत्र–तंत्र काम नहीं आता, कोई विधि–विधान कार्य नहीं करता। सारे क्रिया–कांड व्यर्थ हो जाते हैं।

तंत्र–मंत्र के बाद लालन कहते हैं– यंत्र। यंत्र यानि नक्शा। कोई नक्शा समझाने वाला तो होना चाहिए। अगर नक्शा सामने रखा हुआ है और उसके बारे में कोई न बताए तो कैसे समझोगे? एक बच्चे के सामने भारत का नक्शा रखा है। बच्चा नहीं समझ सकता जब तक शिक्षक उसे न बताए। धर्म के जगत में भी गुरू ही तंत्र–मंत्र की सार्थकता बतलाता है। और इस हृदय में निरंतर एक यंत्र बिना बजाए बज रहा है अगर गुरू संकेत कर दे तो हमें सुनाई देने लगेगा। गुरू इशारा कर दे कि कैसे हम मन का

कोलाहल बंद करें ताकि उसके सुनने के काबिल बन जाएं। फिलहाल तो हम बहरे हैं, उसके सुनने की क्षमता नहीं है। न अनहद वीणा का संगीत सुन पाते, न आंतरिक आलोक देख पाते।

आमार जौन्मो–औन्धो मोन–नौयोन, हम तो अंधे हैं। हमें कुछ दिखाई नहीं देता। अंधा होना यानि मूर्च्छित होना। ऐसी बेहोशी में जीना कि खुद का ख्याल नहीं। आत्म–दर्शन नहीं होता, भीतर की आंख मानो बंद है। वास्तव में तो कोई आध्यात्मिक रूप से अंधा–बहरा नहीं होता। लेकिन जिन सोई हुई क्षमताओं का हमने प्रयोग नहीं किया, उनका होना, न–होने के बराबर है। जैसे तिजोड़ी में छुपे हुए धन के बारे में पता न होने पर हम दरिद्रता में ही जिएंगे, यद्यपि दीन–हीन हैं नहीं। गुरु ने अपने अंतर्धन को पहचाना। वह भीख मांगने वालों को भी उनकी संपदा की याद दिला देता है। कहता है तुम सम्राट हो, जाओ इस विधि अपना खजाना खोजो। वही विधि हैं तंत्र–मंत्र–यंत्र आदि।

गुरू तूमी नित्यो शौचेतौन। गुरू तुम सदा चैतन्य हो, तुम आंख वाले हो, तुम होश में जीते हो हमें भी यह कला सिखा दो। चौरोन देखबो आशाय कौय लालोन। लालन कहते हैं कि हमें ऐसा होश दे दो, हमें ऐसी आंख दे दो, हमें ऐसा चैतन्य दे दो कि हम तुम्हारे चरण देख लें। गुरू ही अपने चरण को देखने की दृष्टि देता है। ज्ञान–औंजोन दैओ नौयोने। लालन कहते हैं कि ज्ञान का अंजन इस नयन में दे दो अर्थात सम्यक दृष्टि दे दो, ऐसी नजर दे दो जिससे कि तुम्हारे चरण कमल अंतर्तम में विराजमान हो जाएं।

आइए सुनते हैं परमगुरू इस बारे में क्या कहते हैं–

'जो प्रकाशित हो उठा हो, जिसके भीतर जल उठी हो ज्योति, उसके चरणों में झुक जाओ। क्योंकि झुके बिना तुम्हारी झोली न भरेगी। नदी की धार बह रही है, तुम प्यासे खड़े हो और अगर झुककर अंजुली न बनाओगे तो तुम्हारी अंजुली में जल न भरेगा और तुम्हारा कंठ प्यासा का प्यासा रह जाएगा। झुको! नदी से जल हाथ में भरना होता है तो झुकना होता है। अंजुली बनाओ, कंठ तक ले जाओ जल को। नदी तुम्हारे कंठ तक नहीं जा सकती। सदगुरु तुम्हारे सामने मौजूद हो सकता है मगर झुकना तुम्हें होगा, अंजुली तुम्हें बनानी होगी, पीना तुम्हें होगा।

जीसस ने कहा है अपने शिष्यों सेः पियो मुझे, पचाओ मुझे, बनने दो मुझे

रक्त–मांस–मज्जा। ठीक कहा है। गुरु को पीना होगा। गुरु कोई व्यक्ति तो नहीं है, अमृत की धार है। गुरु कोई व्यक्ति तो नहीं है, प्रकाश का अवतरण है। गुरु कोई देह तो नहीं है। देह तो आवरण है, देह के भीतर छिपा है कोई, उससे संबंध जोड़ो। उससे झुकोगे तो ही संबंध जुड़ता है। क्यों झुकने से संबंध जुड़ता है? झुकने की कला है। झुकने का अर्थ है, मैं अपना 'मैं–भाव' छोड़ता हूं। जब तक तुम कहते हो 'मैं–मैं' तब तक अकड़ होती है।

कल ही एक सज्जन ने पत्र लिखा कि बड़े दूर से आया हूं। मैं भी ज्ञान को उपलब्ध हो गया हूं। मैं स्वयं गुरु हूं। मेरे शिष्य भी हैं। आपके दर्शन करना चाहता हूं। मैंने पुछवाया कि जब तुम्हें अपने दर्शन हो गए तो तुम इतने दूर नाहक क्यों परेशान हुए हो? दो में से कुछ एक बात तय कर लोः या तो तुमने स्वयं को जान लिया, तब बातचीत की कोई अर्थवत्ता नहीं है। जान ही लिया, बात खत्म हो गई। स्वागत तुम्हारा! धन्यभागी हो तुम! या तो तय कर लो कि तुमने अपने को जान लिया है। तो फिर इतने दूर आने का कोई प्रयोजन न था। और या अगर मिलना है तो फिर तय कर लो कि अभी जानना नहीं हुआ है। लोग जानना भी चाहते हैं और झुकना भी नहीं चाहते। अहंकार को बचाकर लोग सत्य को जान लेना चाहते हैं। यह न तो कभी हुआ है, न कभी हो सकेगा।'

झुकने की कला सीखना। संत लालन के इस रससिक्त संदेश को हृदय में उतरने देना। पचने देना, अपना रक्त बनने देना। शिष्यत्व का भाव उमगे, ऐसी भावदशा में डूबना। समर्पण भक्ति–मार्ग की शुरुआत है और समापन भी, मंजिल भी। प्रेम राह है, और यही है प्रभु का मंदिर भी। बस एक कदम, और बात बन जाती है। बड़ी सुगम, अति–सरल, बिल्कुल सहज! जीवन के प्रति प्रेमपूर्ण दृष्टिकोण में पगो।

बहुत–बहुत धन्यवाद। शुभरात्रि।

(प्रवचन – 2)

जो जागा सो योगी

नमस्कार। आज के सत्संग में सब साधक–साधिकाओं का स्वागत है, एक अद्‌भुत बाउल गीत का रसपान करने के लिए। विशेषरूप से साधक–साधिकाओं के लिए कह रही हूं, क्योंकि इन गीतों में साधना के सूत्र छिपे हैं। ये मनोरंजन के लिए नहीं, मनोभंजन के लिए हैं। सरल सी भाषा में, साधारण से शब्दों में बाउलों ने बड़ी असाधारण बातें कह दी हैं। वे गरीब लोग, आत्मा के धनी हैं। वे पंडित और व्याकरणविद नहीं हैं, कठिन शब्द उन्हें नहीं आते। वे तथाकथित कवि नहीं हैं, छंद–शास्त्र के जानकार नहीं हैं, बल्कि ऋषि हैं। वे बाहरी पुस्तकों से पढ़ा उधार, बौद्धिक ज्ञान नहीं उलीच रहे हैं, वरन आत्मा के भीतर जो अनुभूति घटी है उसे अभिव्यक्ति दे रहे हैं।

बौद्धिक ज्ञान सिर का बोझ बढ़ाता है। आत्मिक अनुभव निर्भार करता है। इसीलिए तो विद्वान गंभीर हो जाते हैं, और संत आनंदित होकर गुनगुनाते हैं, नाचते हैं, इकतारा बजाते हैं। प्रभु का संदेश सुनाते हैं। आंतरिक संपदा की ओर इशारा करते हैं। सुनो यह प्यारा बाउल गीत–

चेतोन थाकते लॉओ चिने कोन बाड़ी रे कार
चेतॉन मानुष देहे बिराजे आट कूठूरी शोलो दॉरजा
मोघ्ये हीरार द्वार।।
देहो माझे आछेन गुरु नाम जॉपो कार शिष्यो होलो कार
साईं गुरुर शुजॉन चेला शॉब्दे गुरुर रॉय।।
ए ब्रॉम्हांडो भंगिया गेले शे भांगिबार नॉय
बाउल दॉरबेशे बौले गुरुरुर चॉरोने शार
ना भोजिले गुरुर पौद वृथा जीबोन तार।।

गीत का भावार्थ है– 'जागरूक होकर जानो कि तुम्हारा बसेरा कहां है? मानव देह के भीतर, आठ महल के सोलह द्वार हैं जिनके मध्य चैतन्य मौजूद है। किंतु नाम तुम किसका जप रहे और शिष्य भी किसके हुए? तुम्हारे अंदर ही तो सब विद्यमान है। गुरु रूपी प्रभु तुम्हें बता रहे हैं कि ओंकार शबद ही वास्तविक गुरु हैं और तुम उसके सुजान शिष्य हो। सृष्टि मिट जाये तो भी वह परम सत्य न मिटेगा। बाउल दरवेश कहते हैं कि गुरु चरणों में ही सार जानो। गुरु चरण भजे बिना जीवन व्यर्थ है।'

एक घटना याद आ रही है। हमारे पड़ोस में एक सज्जन रहते थे। वाकई में सज्जन– कभी शराब वगैरह नहीं पी थी। किंतु एक रात वे किसी के विवाह उत्सव में शामिल हुए तो कुछ हठी मित्रों ने उन्हें जबरदस्ती शराब पिला दी। नशे में वे सज्जन बिल्कुल बेहोश हो गए और उन्हें कुछ याद ही नहीं रहा कि कहां जाना है? बहुत परेशान हो गए... डगमगाकर चलने लगे, कार ड्राइव करते न बने। बड़ी मुश्किल से लोगों ने उन्हें उनके घर पहुंचाया। वे अपने

घर को नहीं पहचान पाए कि यह उनका ही घर है। अपनी मां को देखकर रोने लगे और बोले कि आप तो बूढ़ी हैं, मेरी मां की तरह हैं। मेरी मां भी आप जैसी हैं, वे मेरे इंतजार में बहुत बेचैन हो रही होंगी, बहुत रात हो गई है मुझे मेरे घर पहुंचवा दीजिए। मेरी पत्नी मेरे लिए तड़प रही होगी।

वे अपनी बीवी को भी नहीं पहचान पाए। बोले– बहनजी, आप तो इस चीज को महसूस करिए कि मेरी पत्नी मेरे लिए कितनी व्यथित हो रही होगी! कृपया मुझे मेरे घर तक पहुंचवा दीजिए।

वहां उपस्थित लोग उन्हें समझा–समझाकर तंग हो गए कि भाई, ये तुम्हारी मां हैं, तुम्हारी बीवी हैं, तुम्हारा ही घर है। लेकिन उन सज्जन को कुछ अक्ल में ही न आए। अब क्या किया जाए? एक तरकीब किसी को सूझी। लोगों ने उन्हें फिर से कार में बैठाया, कई चक्कर लगाए बाजार के, तब तक उनका नशा कुछ कम हो गया, उसके बाद उनको पुनः उनके घर लाया गया। तब वे अपनी मां को, पत्नी को, घर को देखकर खूब खुश हो गए कि अहा! आप दोस्तों का बहुत–बहुत धन्यवाद, क्योंकि आप भलेमानुषों ने मुझे मेरे घर तक पहुंचा दिया।

संसार में सभी लोग ऐसी ही बेहोशी में जी रहे हैं। जब तक होश नहीं है हमें घर में रहते हुए भी अपने घर का पता नहीं चलता। हमें बाहर का तो पता है– बाहरी व्यक्तियों का होश है, वस्तुओं का होश है, परिस्थितियों का होश है। बाहरी कामकाज ठीक से चल रहा है, लेकिन भीतर स्वयं का होश नहीं है। हमें अपने अंतर्जगत का पता नहीं चलता। दुनिया भर की बातें स्मरण हैं, अपने बारे में विस्मरण हो गया है। ऐसे आध्यात्मिक प्रमाद में हम जी रहे हैं। और खोजते फिरते हैं कि हमारा घर कहां है? दूसरों से पूछते हैं कि मैं कौन हूं? और मजे की बात है, हम उनसे पूछते हैं जिन्हें खुद अपना ठिकाना नहीं मालूम। जैसे किसी मदिरालय में बहुत से शराबी एक–दूसरे से पूछ रहे हों, ऐसी जगत की हालत है। अथवा, पागलखाने में एक पागल दूसरे पागल को ठीक होने का उपाय बता रहा हो।

बाउल कहते हैं– होश में आना होगा, आध्यात्मिक मूर्च्छा को तोड़ना होगा। यह मूर्च्छा कैसे टूटेगी? स्वयं के प्रति जागने से। जागरण की, अप्रमाद की विधि ही सच्ची धार्मिक साधना पद्धति है। चेतना के विकास का नाम ध्यान है। संत दूलनदास कहते हैं–

जोगी चेत नगर में रहो रे!
प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे।
अंतर लाओ नामहिं की धुनि, करम–भरम सब धो रे।।
सूरत साधि गहो सतमारग, भेद न प्रगट कहो रे।
दूलनदास के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे।।

अर्थात् हे योगी, इस शरीर रूपी नगर में होशपूर्वक रहो। दूसरी शर्त क्या है? अस्तित्व हमें प्रेम करता है जैसे एक मां अपने बच्चे को प्यार करती है और मां का प्रेम निरंतर अपने बच्चे की ओर बहता है। चाहे दिखे या न दिखे लेकिन उसकी प्रेम की तरंगे बच्चे की ओर सदा प्रेममय ऊर्जा के रूप में बहती हैं। ऐसे ही अस्तित्व की ऊर्जा निरंतर हमारे ऊपर बरस रही है। संवेदनशील होकर इसे महसूस करो। हे योगी, इस मन की माला बना लो, तस्बीह बना लो। और भीतर अंतर्तम में एक धुन चल रही है उसमें अपना ध्यान लगा लो।

जब उसमें हम अपना ध्यान लगा लेते हैं तो यह जो कर्ताभाव है कि 'मैं यह कर रहा हूं, वह कर रहा हूं, मैं जिंदगी को चला रहा हूं' यह अहंकार भी विदा हो जाता है। अकर्ताभाव की स्थिति निर्मित हो जाती है। करम–भरम धुल जाता है। अपने भीतर सुरति सध जाती है। फिर 'नाम की धुनि' निरंतर सुनो। उसकी याद में डूबो। जैसे हम व्यक्ति के प्रेम को छुपाकर रखते हैं वैसे ही इस समष्टि की सुरति को हृदय में छुपाकर रखना होगा। लोगों को बताना नहीं है क्योंकि बताने में बहिर्मुखी होना पड़ता है। बताने निकलेंगे तो बहुत संभावना है कि अंतर्मुखता छूट जाए, हम विस्मरण में चले जाएं। तो इस प्रभु–प्रेम को बहुत छुपाकर रखना, सुरति को अपने भीतर सम्हालकर रखना। कबीर साहब के शब्दों में–

मन मस्त हुआ तो क्यों बोले?
हीरा पायो गांठ गठियायो,
बार–बार बाको क्यों खोले।।

असली गुरु वही है जो हमें बतला दे कि परमात्मा हमारे भीतर बैठा है। भीतर जो एक निरंतर गूंज चल रही है ओंकार की धुन, वही हमारा वास्तविक सद्‌गुरु है। वह आवाज दे रहा है, भीतर से हमें प्रतिपल बुला रहा है। केवल मौन होकर बैठने की बात है। जब हम इस गुरु का श्रवण करते हैं तो भीतर से इस बात का उत्तर मिलता है कि यह किसका घर है और यहां कौन रह रहा है? जब भीतर ही वह गुरु बैठा है तो फिर किसका नाम–जप करना है! नाम–जप से लोग किसी नाम का उच्चारण समझते हैं। कोई अल्लाह–अल्लाह, तो कोई राम–राम चिल्ला रहे हैं। ये जो मुंह से बोलना है यह नाम–जप नहीं है। भीतर जो अजपा–जाप चल रहा है, बाउल उसकी बात करते हैं। उस नाद में निमज्जित होना है। जब हम अनहद में डूबते हैं तब समाधि में समाधान मिलता है कि हम कौन हैं, हमारा घर कहां है? आइए, इस संदर्भ में परमगुरु ओशो की अमृत वाणी को सुनते हैं–

'जोगी चेत नगर में रहो रे!'

दूलनदास कहते हैं, चेतना के दो उपयोग हो सकते हैंः या तो कर्ता बन जाओ तो चूक गए; या चैतन्य साक्षी बन जाओ तो राह पर आ गए। जोगी चेत नगर में रहो रे! साक्षी बनो। साक्षी के नगर में रहो। जो साक्षी बन गया, सुख को उपलब्ध हो गया। साक्षी के पीछे सुख

ऐसे आता है जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया आती है।

और जिसे हम खोज रहे हैं वह हमारा स्वभाव है। लेकिन स्वभाव को तो केवल वे ही जान सकते हैं जो सचेत हो जाएं, जो होश से भर जाएं; जिनके भीतर ध्यान का दीया जले। कर्ता में जो पड़ा उसका ध्यान का दीया बुझ जाता है। कर्ता में जो उलझा उसके भीतर अंधेरा ही अंधेरा छा जाता है। अहंकार अंधकार है।

और जो चेता, जिसने कहा मैं कर्ता नहीं हूं, कर्ता तो परमात्मा है, मैं तो सिर्फ द्रष्टा हूं, देख रहा हूं उसकी लीला, देखता हूं उसका खेल, देखता हूं उसका रास, बस मात्र साक्षी हूं। ऐसा बोध होते ही सुख का सागर भीतर उमड़ उठता है– उमड़ ही रहा था, सिर्फ हम उससे अपरिचित थे।

जोगी चेत नगर में रहो रे!

प्रेम–रंग–रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे!

और अगर तुम्हें चैतन्य का थोड़ा–सा भी सिलसिला आ जाए, श्रृंखला लग जाए, थोड़ी–सी भी रसधार चैतन्य की जग जाए तो तुम चकित हो जाओगे, चैतन्य के साथ ही साथ प्रेम का रंग भी जगता है। चैतन्य, ध्यान और प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक तरफ प्रेम, दूसरी तरफ ध्यान। अगर ध्यान जगे तो प्रेम अपने आप जगता है, अगर प्रेम जगे तो ध्यान अपने आप जगता है। ये दो ही मार्ग हैं। अगर ध्यान से चलोगे तो ध्यान तो मिलेगा ही, प्रेम पुरस्कार होगा। अगर प्रेम से चलोगे, भक्ति से, तो भक्ति तो मिलेगी ही, प्रेम तो मिलेगा ही, ध्यान पुरस्कार होगा। दोनों साथ ही घटते हैं।

श्वास चले तो कहना, मैं देखता हूं कि श्वास चलती है। मैं साक्षी हूं कि श्वास चलती है। मैं चलाने वाला नहीं हूं। चलती है तो देखता हूं, नहीं चलेगी तो देखूंगा। मैं साक्षी हूं कि प्रेम हो गया; करनेवाला मैं नहीं हूं। मैं साक्षी हूं कि जवान हूं, मैं साक्षी हूं कि बूढ़ा हो गया। मैं साक्षी हूं कि बीमार, मैं साक्षी हूं कि स्वस्थ। मैं साक्षी हूं कि सफलता आई, मैं साक्षी हूं कि विफलता आई। तादात्म्य को तोड़ते चलो। किसी से तादात्म्य मत जोड़ो। हर घड़ी एक स्मरण को सघन करो कि मैं द्रष्टा, कि मैं बस द्रष्टा। मैं सब देखता हूं भूख लगे तो यह मत कहना कि मैं भूखा हूं, इतना ही कहना कि शरीर भूखा है, मैं भूख का साक्षी हूं। प्यास लगे तो कहना मैं प्यास का साक्षी हूं। और तुम चकित हो जाओगे, बस इतनी छोटी–सी कुंजी– और सारे ताले खुल जाते हैं।

जोगी चेत नगर में रहो रे!'

बाउल कहते हैं कि सृष्टि मिट जाये तो भी वह परम सत्य न मिटेगा। साक्षी शाश्वत है। साक्षीभाव में सुना गया नाम–जप अर्थात् ओंकार सनातन है। 'एक ओंकार सतनाम।' सत्य यानि जो था, है, और रहेगा। 'है भी सच, नानक होसी भी सच।' संसार है स्वप्नवत।

सृष्टि एक दिन नहीं थी, फिर प्रगटी, किसी दिन पुनः विलीन हो जाएगी। साक्षी है परम सत्य। जो बनी है, वह मिटेगी। साक्षी–चेतना, बनने–मिटने की घटनाओं की मात्र द्रष्टा है। वह सृजन नहीं, स्रष्टा है।

इस मधुर गीत में बाउल आगे कहते हैं कि गुरु चरणों में ही सार जानो। गुरु चरण भजे बिना जीवन व्यर्थ है। पहले कहा कि असली गुरु भीतर बैठा है। बाह्य जगत में सद्गुरु वही है जो बतला दे कि असली गुरु भीतर विराजमान है। सद्गुरु की शरण जाकर ही इस सार तत्व का बोध होगा। जो साकार गुरु भीतर बैठे निराकार गुरु का परिचय कराता है, उसके चरणों में झुको। अंतर्यात्रा की दिशा में उसके इशारों को पकड़ो। जब उसके चरणों में हम मौन होकर बैठेंगे तभी हमारे विचारों का जाल कटेगा और अहंकार गलेगा। जितना हमारा अहंकार गलेगा, निर्विचार जागरण सधेगा, उतना ही हमारे भीतर आत्मा का स्वरूप प्रगट होगा। अन्यथा जीवन वृथा है। जीवन एक दुखद कथा है, विपदा–मात्र! निश्चितरूप से गुरु ही इस विषाद की कीचड़ से बाहर निकालते हैं और आंतरिक सम्पदा से परिचय करवाते हैं जो अमूल्य है। विराट अस्तित्व की क्या कीमत हो सकती है, उसका मूल्य आंका ही नहीं जा सकता। तभी तो मीराबाई गाती हैं–

पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दीं मेरे सतगुरु
किरपा कर अपनायो।

ये कौन सी अमूल्य वस्तु है जो कि सद्गुरु ही दे सकता है? जो जीवित सद्गुरुओं के पास जाते हैं, उनके चरणों में बैठते हैं, गलना सीखते हैं उनके भीतर यह आनंद का खजाना खुलता है।

गुरु का एक हाथ हमारे हाथ में होता है और दूसरा हाथ प्रभु के हाथों में होता है। गुरु ही एक ऐसा सेतु है जिसके माध्यम से हम उस निरंकार गुरु तक पहुंच सकते हैं और उस चरण तक पहुंच सकते हैं जो हमारे भीतर चैतन्य नाद के रूप में मौजूद है। जो परम सत्य, आलोक के रूप में, शून्यवत साक्षीत्व के रूप में मौजूद है।

(प्रवचन – 3)

अशुद्ध प्रेम और विशुद्ध प्रेम

तार नॉयन देखले चेना जाय
शुद्धो प्रेमेर प्रेमी जे जॉन हॉय
मुखे कौथा कॉक तार
नॉयन देखले चेना जाय।

मोनीहारा फॉनी जेमोन
प्रेम रोशिकेर दूटि नॉयोन
कि देखे कि कॉरे शे जॉन
के ताहार औतो पाय।

रुपे नॉयोन झूरे खॅांटि
भूले जाय शे नाम –मौंत्रोटि,
चित्रोगुप्तो तार पाप–पुन्यो
कि रुपे लेखे खाताय।

सांईजी कौय बारे बारे
शोन रे लालोन बोलि तोरे
तूमि मॉदोन रॅाशे बैड़ाओ घूरे
शे प्रेम शॉने कोई दॉड़ाओ।।

विशुद्ध प्रेम का प्रेमी मुंह से कुछ नहीं कहता। उसकी आंखें ही सब कुछ बता देती है। जिस प्रकार सर्प की मणि चमकती रहती है उसकी प्रकार परमात्मा के प्रेम में डूबी आंखें और कुछ नहीं देखती सदा एक अपूर्व ज्योति उन आंखों में समायी रहती है।

जो नाम–रस को भूलकर जगत के रस में डूबा रहता है उसके पाप–पुण्य का लेखा–जोखा फिर विधाता ही करता है। इसलिए संत लालन बार बार कह रहे हैं कि उस नाम–रस के सामने उस प्रेम–भक्ति के सामने काम–रस नहीं टिक पाता।

जो प्रेमी है, जो विशुद्ध प्रेम में जीता है उसे मुंह से कहने की कोई जरूरत नहीं होती, वह मुंह से कुछ कहता ही नहीं है, उसकी मौजूदगी ही सब कुछ बयां कर देती है। उसकी आंखें कहती हैं। विशुद्ध प्रेम क्या है? विशुद्ध प्रेम को समझने के लिए अशुद्ध प्रेम के बारे में भी जानना जरूरी है।

अशुद्ध प्रेम सदा दूसरे के कारण होता है। अशुद्ध प्रेम परकेन्द्रित है, प्रतिक्रियात्मक है। किसी ने हमें फूल लाकर दिया, कोई हमें देखकर मुस्कुराया, किसी ने हमारी प्रशंसा की, किसी ने 'आई लव यू' कह दिया और हमें प्रेम हो गया। यह प्रेम दूसरे के कारण हुआ, हमारे

कारण नहीं। और इस प्रेम में लेने–देने का भाव है। जैसे–जैसे प्रेम शुद्धतम होता जाएगा देने का भाव बढ़ता जाएगा और लेने का भाव कम होता जाएगा। जितनी ज्यादा अशुद्धि उतना ही ज्यादा लेने का भाव और जितनी ज्यादा शुद्धि उतना ज्यादा देने का भाव।

फिर विशुद्ध प्रेम क्या है? विशुद्ध प्रेम हमारी चेतना का स्वभाव है। ओशो कहते हैं हमारी चेतना प्रेम के अणुओं से बनी है, प्रेम हमारा स्वभाव ही है। और यह प्रेम अकारण होता है, हम प्रेममय हैं। जैसे एक फूल है जिसके पास खुशबू है, वह खुशबू सबके लिए है। जैसे एक दीपक की रोशनी सबके लिए होती है, दीपक कोई भी भेद नहीं करता। जैसे बरसात का बादल हर छत पर बरसता है ऐसा ही है विशुद्ध प्रेम।

अशुद्ध प्रेम में विपरीतता होती है, पेण्डुलम की तरह डोलता है। प्रेम है तो घृणा भी होगी। लेकिन शुद्ध प्रेम डोलता नहीं है, वह सदा एक जैसा, शाश्वत–रस होता है। विशुद्ध प्रेम का प्रेमी मुंह से कुछ नहीं कहता। शब्दों में समा नहीं सकता प्रेम। भाषा है अति–संकीर्ण, और प्रेम है विराट। शब्दों की गागर में भला प्रेम का सागर कैसे आएगा? भाषा केवल छुद्र को ही व्यक्त करने में समर्थ होती है।

एक बार बुद्ध सुबह–सुबह हाथ में फूल लेकर प्रवचन देने के लिए आते हैं। वैसे तो वे सदा खाली हाथ आते थे लेकिन आज वे हाथ में फूल लेकर आए और मौन बैठे हैं। कुछ भी नहीं कह रहे हैं। सभा के बीच में बैठे हैं, केवल फूल को देख रहे हैं और ध्यान की गहराइयों में उतर गए हैं, बैठे–बैठे समाधि के शिखर को छूने लगे हैं। बुद्ध जैसे–जैसे गहराई में जाते जा रहे हैं लोग भी शांत होने लगे हैं। आज बुद्ध बोलने नहीं आए थे, सुनाने नहीं आए थे, आज बुद्ध दिखाने आए थे। लेकिन देखने के लोग तैयार ही नहीं हैं, वे तो सुनने के लिए आए थे। लोगों को हीरा दिखाओ तो वे उसे देखने के लिए तैयार नहीं हैं, लोग तो हीरा के बारे में समझने के लिए राजी हैं। आनंद नहीं चाहिए, आनंद के बारे में ज्ञान चाहिए। भोजन नहीं, पाक–शास्त्र पढ़कर पेट भरने का ख्याल है लोगों का। बुद्ध के आसपास की हवाएं महकने लगीं, और अधिकांश भिक्षु सुनने को बेताब होने लगे। कोई इक्के–दुक्के सौभाग्यशाली भिक्षु बुद्धत्व का रसपान कर सके।

मेरी फिजाए जीस्त पर नाज से छा गया कोई।
आंखों में आंखें डाल के बंदा बना गया कोई।।

बुद्ध आज परमात्मा दिखा रहे थे, बुद्धत्व दिखा रहे थे लेकिन ज्यादा लोगों की आंखें बंद थीं और लोग नहीं समझ पाए। बुद्ध समाधि में और–और डूबते गए। उनका संदेश क्या था? उनका मैसेज था हाथ में फूल और समाधि की गहराई। जैसे–जैसे हमारे भीतर समाधि की गहराई होती है ये जीवन फूल की तरह खिलता जाता है, यह बुद्ध मौन में बोल रहे थे, उनकी आंखें बोल रही थीं। सत्य आंख के द्वारा आता है, शब्द कान के द्वारा आते हैं। इसीलिए तो दर्शन शब्द बना, हम दर्शन के लिए जाते हैं कि संत के दर्शन हो जाएं... आंखों में कुछ बात बन जाए, यह है दर्शन, यह है मौन, यह है सत्संग। कुछ बातें बोलकर नहीं बताई जा सकतीं,

शब्दातीत हैं वे, उनको किसी तरह से बयां ही नहीं किया जा सकता।

दिल से पर्दा जो उठा, हो गईं रोशन आंखें।

दिल में वह पर्दानशीं था मुझे मालूम न था।।

जब संत हमारी ओर देखता है तो हमारी आंखों में पवित्रता का उदय होता है, तब हम एक भरोसे को अपने भीतर देख पाते हैं, हमारे भीतर कुछ दिव्यता का आभास होता है। तथाकथित संन्यासी, तथाकथित साधु जिन्होंने सत्य नहीं जाना केवल वेश से संन्यासी हैं जब वे देखते हैं तो ऐसे देखते हैं कि जैसे हम कूड़े–करकट के ढेर पर खड़े हों। लेकिन जब एक संत देखता है तो वो हमारे भविष्य को देखता है।

सद्‌गुरु ओशो अपने प्रवचन के अंत में कहते थे कि 'आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।' वे हमारे भीतर बैठे परमात्मा को देख रहे हैं, उनकी आंखें हमें भरोसा दिला रही हैं कि हम भी खिल सकते हैं तुम्हारी तरह, हमारे भीतर भी यह करिश्मा पैदा हो सकता है जो तुम्हारे भीतर पैदा हुआ है, ऐसा भरोसा दिला देती हैं ये आंखें। ये संत की नजरों का कमाल होता है।

वाजिद ने लिखा है कि मैं अपने गुरु के पास गया तो तीन साल तक मेरे गुरु ने मेरी तरफ देखा ही नहीं। तीन साल बाद उन्होंने नजरें उठाकर मेरी ओर देखा, तब मेरे भीतर कुछ ऐसा स्पंदन हुआ कि पूरा जीवन शीतलता से भर गया। गुरु की एक नजर से जीवन के सारे पाप धुल जाते हैं।

संत धर्मदास कहते हैं–

दर्शन देहु कबीरा, अब मोहिं दर्शन देहु कबीर।

तुम्हरे दरश से पाप कटत हैं निर्मल होत शरीर।

अमृत भोजन हंसा पावे शब्द धूमि के खीर।

तो जब गुरु हमें देखता है तो ऐसा ही अनुभव होता है शिष्य को कि जैसे शरीर निर्मल हो गया। उस आत्मा को जैसे भोजन मिल गया हो अमृत का, ये आंखें हमारे हृदय और आत्मा से जुड़ी हुई हैं। लेकिन इसके लिए एक संवेदनशीलता चाहिए, संवेदनशील शिष्य ही इसे महसूस कर पाते हैं। महाकाश्यप नामक एक भिक्षु ऐसा ही सौभाग्यशाली शिष्य था। वह बुद्ध के हाथों में फूल देखकर निर्विचार जागरण को उपलब्ध हो गया और अट्टहास करके हंसा। बुद्ध ने निकट बुलाकर वह फूल उसे भेंट कर दिया। जिस प्रकार सर्प की मणि चमकती रहती है उसकी प्रकार परमात्मा के प्रेम में डूबी आंखें और कुछ नहीं देखती सदा एक अपूर्व ज्योति उन आंखों में समायी रहती है। परमगुरु ओशो जब रजनीशपुरम में थे तो वे साढ़े तीन साल तक मौन रहे। दोपहर कार ड्राइव करने निकलते थे। उस समय सारे शिष्य अपने–अपने वाद्ययंत्र लेकर रास्ते में खड़े हो जाते, गाते–बजाते थे और उत्सव के साथ खूब नाचते थे। ओशो अपनी आंखों से केवल देख लेते थे... बस, जादू हो जाता था!

बाउल फकीर कहते हैं, जो नामरस को भूलकर कामरस में डूबा रहता है उसके भाग्य का

फैसला विधाता ही करता है।

उसे बदनसीब ही जानिए, उसे नामुराद ही मानिए
जो गली में उसकी गया नहीं, जो गली में उसकी मिटा नहीं।

जिसने परमात्मा का नाम न लिया हो, जिसने ध्यान को न जाना हो वह तो बहुत बदनसीब है। जिसकी चेतना सदा संसार की ओर बहती रही, जो सदा कामरस से प्रभावित होता रहा और रामरस का ख्याल ही न किया वह दुर्भाग्यशाली है। अब उसके पाप–पुण्य का फैसला विधाता ही करता है। विधाता यानि एक नियम, अगर हम आग में हाथ डालेंगे तो हाथ जलेगा। जिसके लिए बुद्ध कहते हैं एस धम्मो सनंतनो, जिसके लिए लाओत्से कहते हैं ताओ। एक नियम से ये सृष्टि चल रही है।

अगर हमारी ऊर्जा सदा बाहर–बाहर जा रही है और हम आत्मविस्मरण में जी रहे हैं तो निश्चितरूप से हम पाप कर रहे हैं। आत्मविस्मरण पाप है, बेहोशी पाप है, बेहोशी में हम जो भी करेंगे पाप ही करेंगे। और जब हम नीम का बीज बोए हैं तो उसमें मीठे फल कैसे लग सकते हैं।

मीठे फल पाने की तमन्ना में
सदा से बीज कड़वे बो रहा हूं।
जिंदगी को बोझ जैसी ढो रहा हूं,
जागता दिखता हूं लेकिन सो रहा हूं।

जागते हुए दिखते बस हैं, हम मूर्च्छा में जी रहे हैं। हम सोचते हैं कि हम पुण्य कर रहे हैं लेकिन मूर्च्छित अवस्था में किया हुआ पुण्य भी पाप है। वह हमारे जीवन के विकास का कारण नहीं बन सकता, वह हमें जीते–जी और मरते समय भी निश्चितरूप से दुख और नर्क की ओर ही ले जाएगा।

हवा के दोष पे रखे हुए चिराग हैं हम
जो बुझ गए तो हवा से शिकायतें कैसी?

हम हमेशा शिकायतों में जीते हैं, हम यह नहीं देखते कि हम नियम से विपरीत दिशा में चल रहे हैं। और फिर जीवन में जब कुछ अनहोनियां होती हैं तो हम शिकायतों से भर जाते हैं और पूरा दोष हम परमात्मा और भाग्य पर थोपते हैं। जिस दिन शिकायत भाव, अहोभाव में बदल जाता है उसी दिन से हमारे जीवन में पुण्यों का उदय शुरू होता है। अब हमें पता चल गया कि प्रतिकर्म और अकर्म क्या है, विकर्म क्या है? जब हम अकर्म भाव से, अकर्ताभाव से कर्म करते हैं तो वे हमारे जीवन को स्वर्ग की ओर ले जाते हैं।

संत लालन बार–बार कह रहे हैं कि प्रेम रस के सामने काम रस नहीं टिक पाता। एक सोच है परंपरावादियों की, वे कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, मोह छोड़ो तब जाकर परमात्मा मिलेगा। वे कहते हैं कि कंकण–पत्थर जो पकड़े हो उन्हें छोड़ो तब जाकर तुम्हारे हाथों में हीरे आएंगे, तब जाकर तुम्हारे जीवन में परमात्मा आएगा। लेकिन बाउल फकीर कहते हैं– पहले

जीवन में हीरा आ जाने दो कंकण–पत्थर अपने आप ही गिर जाएंगे, उनसे रस अपने आप ही समाप्त हो जाएगा। जब तक हाथ में हीरा नहीं आता तब तक कंकण–पत्थर भी हीरे जैसे लगते हैं, जिस दिन सही हीरा दिख जाता है उस दिन कंकण–पत्थर छूट जाते हैं। उच्चतर के आगे निम्नतर टिक नहीं पाता। श्रेष्ठ मिल जाए तो निकृष्ठ का त्याग करना नहीं पड़ता, त्याग स्वतः हो जाता है।

आइए, ऋषि शांडिल्य के भक्ति–सूत्र पर परमगुरु ओशो की अमृत–वाणी, विशुद्ध प्रेम के बारे में सुनते हैं–

'भक्ति की पहली व्याख्या का सूत्र– वह ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है। ऊर्जा का एक रूप है– काम, ऊर्जा का दूसरा रूप है– प्रेम; ऊर्जा का तीसरा रूप है– भक्ति। भक्ति और काम के बीच में प्रेम है। प्रेम का एक हाथ काम से जुड़ा है; प्रेम का दूसरा हाथ भक्ति से जुड़ा है, परम प्रेमरूपा है भक्ति। परम प्रेमरूपा का अर्थ हुआ– प्रेम खालिस सोना बचा; चौदह कैरेट नहीं, अट्ठारह कैरेट नहीं, खालिस! उसमें एक भी कैरेट कामवासना का न रहा। शुद्ध प्रेम हो गया, तो भक्ति!

क्योंकि तुम प्रेम को शायद थोड़ा–सा जानते हो, इसलिए प्रेम के आधार पर भक्ति को समझाया जा रहा है। तुम प्रेम की थोड़ी–सी भाषा जानते हो, वह भी पूरी नहीं जानते; कहीं सपने में झलक मिली है; कहीं टटोलते–टटोलते हाथ पड़ गया है; कहीं से कोई थोड़ी पहचान आ गयी है; सांयोगिक रही होगी, लेकिन तुम्हें थोड़ा–सा स्वाद है।

जैसे कि पीतल पीला है, और सोना तुमने नहीं देखा, तो हम पीतल से सोने को समझाते हैं। कहते हैं– ऐसा ही पीला, पर और शुद्ध, ज्योतिर्मय, सूर्य की किरण जैसा चमकता हुआ! कुछ प्रतीक खोजते हैं। प्रतीक खोजना वर्णन है, व्याख्या है। 'वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।'

परमप्रेम तभी है जब प्रेमी की भी जरूरत न रह जाए, जब तक प्रेमी की जरूरत है तब तक तुम्हारा परमप्रेम नहीं, वह तो निर्भर है। निर्भर है तो शुद्ध प्रेम नहीं हुआ। जिससे तुम प्रेम करोगे वह तुम्हारे प्रेम को आच्छादित करेगा, जिससे तुम प्रेम करोगे वह तुम्हारे प्रेम को रंग देगा, जिससे तुम प्रेम करोगे वह तुम्हारे प्रेम को ढंग देगा, परम नहीं हो सकता।

ऐसा समझो कि जब भी सोने का आभूषण बनाओगे तो शुद्ध न रह जाएगा, कुछ न कुछ मिलाना पड़ेगा क्योंकि शुद्ध सोना इतना नाजुक है कि उसके आभूषण बन ही नहीं सकते, उसमें कुछ न कुछ मिलाना ही पड़ेगा विजातीय। कुछ तांबा मिलाओ कि चांदी मिलाओ। वह अठारह कैरेट रह जाएगा, बीस कैरेट हो जाएगा लेकिन शुद्ध नहीं हो सकता, चौबीस कैरेट नहीं हो सकता। ऐसा समझो कि भक्ति के जब तुम आभूषण बनाते हो तो प्रेम हो जाता है और जब तुम प्रेम के आभूषण को पिघलाकर शुद्ध कर लेते हो तो वह परमात्मा हो जाता है।'

पदार्थ से प्रभु की ओर, शिला से शिव की ओर, काम से राम की ओर चलें। यही बाउल फकीर का संदेश है। यही समस्त संतों की वाणी का सारभूत निष्कर्ष है।

(प्रवचन – 4)

मानुष जन्म– एक स्वर्णिम अवसर

ऐक दिन पारेर कौथा भाबलि ना रे
पार हौबो हीरेर साँको कैमोन कोरे
पारेर कौथा भाबलि ना रे

ऐक दौमेर भौरोशा नाई
कौखोन कि कोरबे रे साई
तौखोन कार दिबि दोहाई कारागारे
ऐक दिन पारेर कौथा भाबलि ना रे

बिने कोड़ीर शौदाय केना
मूखे साईर नाम जौपोना
ताते कि औलोशपाना देखि तोरे
ऐक दिन पारेर कौथा भाबलि ना रे

भाशाओ ओनूराग–तोरी
बौशाओ मूरशिद–कान्डारी
लालोन कौय शे–ई शे पाड़ि जाबे शेरे
ऐक दिन पारेर कौथा भाबलि ना रे

ये हीरे जैसा तेरा तन कैसे पार लगेगा, इसकी चिंता कभी तूने क्यों नहीं की। रे मन! इन सांसों का तो कुछ भी भरोसा नहीं है कि कब परमात्मा इसे वापिस ले ले, तब तू किस की दुहाई देता फिरेगा? क्योंकि ये संसार तो जेल है, कैदखाना है, यहाँ तेरी कौन सुनेगा?

बिना मोल के ये सुंदर तन पाकर भी तूने परमात्मा का नाम नहीं लिया और सदा आलस में समय बिताया। संत लालन कहते हैं कि अब भी चेत जा। अपने मुर्शिद को तू खेवइयां बना और भक्ति–रस की नैया उन्हीं के हाथों में सौंप दे। केवल गुरु ही हैं जो संसार समुंद से पार लगा सकते हैं।

ऐक दिन पारेर कौथा भाबलि ना रे

पार हौबो हीरेर साँको कैमोन कोरे

पारेर कौथा भाबलि ना रे

यह जीवन एक बहुत मूल्यवान संपदा है लेकिन हम इसे व्यर्थ में गंवाने के सिवाय और कुछ करते नहीं हैं।

एक कथा मैंने सुनी है कि एक मछुआरा रोज सुबह नदी पर जाता था, मछली पकड़ने के लिए। एक दिन मछुआरा भोर के पहले ही, जब सूरज भी नहीं निकला था तभी नदी पर पहुंच गया और तट पर चक्कर लगाने लगा। अचानक उसका पैर किसी चीज से टकराया। उसने देखा तो वह एक थैली थी। उसने उस थैली को उठाया जो कि छोटे–छोटे कंकड़–पत्थरों से भरी हुई थी। वह तट पर बैठ गया और एक–एक पत्थर नदी में फेंकता रहा। छपाक की आवाज सुनता रहा। वह सोच रहा था कि एक–एक पत्थर फेंकने में समय कट जाएगा और सुबह की रोशनी हो जाएगी तो फिर मैं काम शुरू करूंगा। जब आखिरी पत्थर उसके हाथ में था और अचानक सूरज की पहली किरण आ गई तो वह चीख पड़ा, अरे! ये मैंने क्या किया? ये तो पत्थर नहीं हैं, ये तो हीरे–जवाहरात हैं और मैंने तो सब पानी में फेंक दिये। मछुआरे के हाथ में अंतिम हीरा चमक रहा था।

हमारा भी जीवन ऐसा ही है। हमने अपने जीवन में भी हीरे–जवाहरात जैसे जीवन को फेंकने के सिवाय कुछ भी नहीं किया है। लेकिन अगर एक क्षण भी बच गया है इस जीवन का तो देर नहीं हुई है। हम उस एक क्षण में भी इस जीवन की नैया को पार लगा सकते हैं, इस जीवन को दिशा दे सकते हैं और परम आनंद की मंजिल तक पहुंच सकते हैं। इतनी बड़ी संभावना को नष्ट करने और संपदा को सिवाय फेंकने के हमने और कुछ भी नहीं किया है।

बिना जाने कि इसी जीवन में शांति के खजाने हैं, आनंद के माणिक और प्रेम के लाल हैं, प्रीति के जवाहरात, भक्ति के मोती– बेशकीमती हीरे छुपे हुए हैं और हम यूं ही दीन–हीन–दुखी जी रहे हैं। हम भिखारियों की तरह दूसरों से प्रेम मांगते रहते हैं, आनंद दूसरों में खोजते रहते हैं जबकि ये हीरे–जवाहरात रूपी आनंद और प्रेम स्वयं के जीवन में, अपने अंतर्तम में मौजूद हैं।

इस जीवन में कभी भी ऐसा नहीं होता कि बहुत देर हो गई हो। जिस क्षण हमें याद आ जाए वही क्षण पर्याप्त हो जाता है अपने आनंद स्वरूप में लौटने के लिए।

ऐक दौमेर भौरोशा नाई

कौखोन कि कोरबे रे साई

तौखोन कार दिबि दोहाई कारागारे

ऐक दिन पारेर कौथा भाबलि ना रे

यहां एक क्षण का भी भरोसा नहीं है और हम भविष्य की सोचते रहते हैं। जबकि क्षण में प्रलय हो सकता है और पीछे बस, पछताना मात्र रह जाता है।

संत दरिया साहब कहते हैं, हाथी–घोड़ा माल समाना सब गर्द समाना रे!

हम भावी योजनाओं के निर्माण में व्यस्त रहते हैं। आगे कभी जीवन में आनंद पाने के लिए, सुख के साधन एकत्रित करने में अपना समय बिता देते हैं। आनंद तो नहीं मिलता लेकिन हम सुख–सामग्री इकट्ठी करते जाते हैं, सुविधा के सामान इकट्ठे करते जाते हैं और अंततः आखिरी सांस की घड़ी भी आ जाती है। ये सांस कभी भी अंतिम हो सकती है लेकिन हमने कितना ग्रांटेड ले लिया है इस जीवन को! ये जीवन जो पानी के बुलबुले की तरह है, अब फूटा कि तब फूटा और हमने लंबी–लंबी योजनाएं बनाई हैं, आनंद पाने के लिए, प्रेम पाने के लिए। सुख पाने के लालच में, अज्ञान के अंधेरे में बैठे–बैठे, ऐसे ही हीरे जैसे जीवन को फेंकते जा रहे हैं। कौन जाने, कब प्रलय हो जाए? सामूहिक कयामत हो या न हो, व्यक्तिगत रूप से तो हमें समाप्त होना ही है!

पृथ्वी पर समष्टिगत प्रलय हो या न हो लेकिन व्यक्तिगत प्रलय तो सुनिश्चित है। किसी भी क्षण मौत हमारे द्वार खटखटा सकती है। हमारी प्रलय तो पक्की है, लेकिन हम इस सत्य से आंख मूंदे रहते हैं। यद्यपि पता नहीं, कब यह जीवन हमारे हाथ से फिसल जाए और पास में शेष कुछ भी न बचे। किसी शायर ने कहा है–

'जिन्दगी फना की एक राह, पीता जा जब तक उठे हाथ।'

इस जीवन को फना होना ही है, यह तो एक दिन छूट ही जाएगा, विदा हो ही जाएगा। इसके पहले कि मौत हमारे द्वार पर दस्तक दे, इसके पहले कि हम फना हों, हम ऐसी संपत्ति इकट्ठी कर लें जो हमारे साथ जा सके, जो मृत्यु–पर्यंत हमारे साथ रहे। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं–

'बिन हर सगल निरारथ काम।

सुइना रुपा माटी दाम।'

बिना हरि के, बिना प्रभु के सारे काम निरर्थक हैं। सब सोना मिट्टी की तरह है। अगर हम परमात्मा से नहीं जुड़े हैं, अगर हम ओंकार से नहीं जुड़े हैं, अगर हमने अपने अंतर्तम में शांति के खजाने को नहीं पाया तो हम कितना भी स्वर्णादि इकट्ठा कर लें, सब

मिट्टी तुल्य है और अगर हमने गोविंद को जान लिया तो मिट्टी भी सोना हो जाती है। एक मिट्टी की झोपड़ी भी महल का मजा देती है। और अगर हम गोविंद से कटे हुए हैं, अपनी मूल से दूर हैं तो सोने का महल भी मिट्टी की तरह है। तब कोई सुख नहीं, सिर्फ निराशा, सिर्फ उदासी, सिर्फ हताशा हाथ लगती है।

बिने कोड़ीर शौदाय केना
मूखे साईर नाम जौपोना
ताते कि औलोशपाना देखि तोरे
ऐक दिन पारेर कौथा भाबलि ना रे

बिना मोल के इस सुंदर तन को पाकर हमने परमात्मा का नाम नहीं लिया, सदा आलस में समय बिताया। आइए, इस संदर्भ में परमगुरु ओशो की अमृत–वाणी सुनते हैं–

'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होयेगी, बहुरि करोगे कब।।'

'कबीर ने कितनी सीधी बात, साफ बात कही कि जो कल करना हो उसे आज ही कर लो और जो आज करना है उसे अभी कर लो। चूंकि पल भर का भी भरोसा नहीं है कि प्रलय कब हो जाएगी, कब मौत आ जाएगी, कब ये रेत की दीवार ढह जाएगी? एक क्षण का भी भरोसा मत कर। कल की बात आज, आज की अभी कर लें ताकि जो करना है वह हो जाए।

लोग टालते हैं और मजे की बात यह है कि गलत को नहीं टालते। अगर कोई तुम्हें गाली दे तो तुम यह नहीं कहोगे कि अच्छा है, चलो छोड़ो! सोचेंगे, विचारेंगे, पूछताछ करेंगे, मशविरा करेंगे और फिर जो निष्कर्ष निकलेगा; उपयुक्त समय जब आएगा तब करेंगे। जब कोई गाली देता है तो फिर हम न समय देखते हैं, न ही घड़ी! हम उसी वक्त उसको ठीक करते हैं। एक क्षण की भी देरी नहीं होती, उधर गाली निकली कि इधर तुम तैयार हुए, फौरन तुमने और दुगुनी वजन की गाली दी। हां, अगर कोई अच्छा काम करना होता है तो काफी सोचते–विचारते हो। अगर जीवन को बदलना है तो इस गणित को पलटो।'

भाशाओ ओनूराग–तोरी
बौशाओ मूरशिद–कान्डारी
लालोन कौय शे–ई शे पाड़ि जाबे शेरे
ऐक दिन पारेर कौथा भाबलि ना रे

संत लालन कहते हैं कि तू अभी भी चेत जा, अपने मुर्शिद को खेवैया बना और भक्ति की नैया उन्हीं के हाथ में सौंप दे। केवल गुरु ही भवसागर से नैया को पार लगा सकते हैं। जो कीचड़ से बाहर खड़ा है, वहीं दलदल में फंसे व्यक्ति की मदद कर सकता है। जो खुद ही नदी में डूब रहा है वह कैसे डूबते का सहारा बनेगा! संत पलटूदास कहते हैं–

बहुरिं न ऐसा दांव, नहीं फिर ऐसा मानुष होना,

क्या ताके तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना।

मनुष्य–जन्म बारम्बार नहीं मिलता। ऐसा अद्भुत स्वर्णिम अवसर हमें मिला है अब ऐसे ही इसे नहीं जाने देना है। एक संकल्प से भर जाना है कि इस जीवन का जो उद्देश्य है वह हमें मिल जाए, तो परम तृप्ति घटित हो जाए। कैसे वह लक्ष्य पूरा हो? हम इतनी बहुमूल्य संपत्ति लेकर पैदा हुए हैं लेकिन हमें पता ही नहीं है कि हमको बहुमूल्य उपहार मिला है। हम खुद से अजनबी जो हैं! अपने भीतर कभी झांककर देखा ही नहीं कि वहां क्या है? हालत ऐसी है कि हम सम्राट हैं और भिक्षु बने दर–दर भटक रहे हैं। अपनी तिजोड़ी खोलकर देखी तक नहीं है। संपत्ति की तो बात दूर, हम हजार तरह की विपत्तियों में फंसे हैं। संपदा नहीं, जिंदगी विपदा सी लग रही है।

एक बार एक व्यक्ति बहुत ही निराश होकर आत्महत्या के लिए जा रहा था और नदी में कूदने ही वाला था कि पीछे से एक फकीर ने उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा, यह तू क्या कर रहा है? उस युवक ने पीछे पलटकर देखा और गुस्से में कहा कि क्या कर रहा हूं? अरे, मर रहा हूं। मैं जीना नहीं चाहता हूं। कंगाली, मुसीबतों और दरिद्र जीवन से मैं ऊब गया हूं और अब समाप्त होना चाहता हूं।

फकीर बोला कि मुझे लगता है कि तुम बहुत ही बहादुर हो, मगर बुद्धू भी हो। तुम्हारे पास तो अकूत खजाना है। इन वस्तुओं का व्यापार किया जा सकता है।

उस आदमी ने कहा कि तुम्हारी आंखें अंधी हैं क्या? अथवा पागल हो? तुम फकीर होते हुए भी मुझ निराश इंसान से मजाक कर रहे हो?

फकीर ने कहा कि तुम एक दिन रुक जाओ। कल मेरे साथ चलना। मेरा एक दोस्त सम्राट है, उससे मिलवाकर मैं बता दूंगा कि तुम्हारे पास कितना कुछ हैं। जो मर्जी हो सामान बेच देना।

वह युवक बोला कि चलो, आज न सही कल मर जाउंगा। ठीक है, मैं एक दिन आपको देता हूं।

दूसरे दिन सुबह वे दोनों बादशाह के पास गए। फकीर ने सारी जानकारी अपने

बचपन के दोस्त, बादशाह के कान में बता दी। बादशाह ने उस युवक को गौर से देखा और कहा कि ठीक है, क्या तुम अपनी दोनों आंखे देने के लिए तैयार हो? मैं तुम्हें इन दोनों आंखों की कीमत में दो लाख सुवर्णमुद्राएं देने राजी हूं। उस युवक ने कहा कि किस तरह के बादशाह हो तुम? मेरी आंखों का तुम क्या करोगे? बादशाह ने कहा– मैं क्या करूंगा, इससे तुम्हें क्या मतलब? मैं तुम्हें दो लाख मुद्राएं दे रहा हूं। कम लग रही हों तो तीन लाख दे दूंगा। युवक बोला कि नहीं, मैं बिल्कुल तैयार नहीं हूं।

बादशाह ने कहा– तुम्हारी नाक की आकृति सुडौल है, क्या तुम्हारी नाक ले लूं? पांच लाख कीमत दूंगा। वह आदमी चिल्लाया कि तुम कसाई हो क्या? मेरी नाक काटकर तुम पांच लाख दोगे मुझे? ऐसे ही एक–एक अंग की कीमत सम्राट बताता गया। आंत, लिवर, हृदय, फेंफड़े, मस्तिष्क... सब मिलकर दो करोड़! तब उस आदमी को एहसास हुआ कि मेरे पास तो बहुत कीमती–कीमती अंग हैं और मैं अपने आपको कंगाल समझता रहा हूं।

हमारे पास किडनी हैं, कोई अगर कहे कि मैं तुम्हें दस करोड़ रुपये दे दूंगा, दोनों किडनी मुझे दे दो तो क्या हम सौदा करने राजी होंगे? तो जानो कि हमारा जीवन बहुत अनमोल है किंतु हमें इसके मूल्य का अहसास नहीं है। ऐसे ही हम इसे व्यर्थ गंवा देते हैं। इसीलिए पलटू साहब कहते हैं– बहुरि न ऐसा दांव, नहीं फिर मानुश होना। ये जो जीवन हमें सौगात में मिला है, इसका उद्देश्य है प्रभु तक जाना; इसका उद्देश्य है परिपूर्ण आनंदित होकर जीना। हम आनंदित कैसे हो सकते हैं? समझो कि ये जिंदगी एक नाव है और मंजिल है परमात्मा। जो परमात्मा तक चला जाता है वही सच्चिदानंद में जीता है।

अन्यत्र पलटू साहब समझाते हैं कि कैसे मंजिल तक यात्रा करें–

नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरे पार।।
कैसे उतरे पार पथिक विश्वास न आवै।
लगै नहीं वैराग यार कैसे कै पावै।।
मन में धरै न ग्यान, नहीं सतसंगति रहनी।
बात करै नहीं कान, प्रीति बिन जैसी कहनी।।
छूटि डगमगी नाहिं, संत को वचन न मानै।
मूरख तजै विवेक, चतुराई अपनी आनै।।
पलटू सतगुरु सब्द का तनिक न करै विचार।

नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरे पार।।

इस जिंदगी के नाव को पार लगाने के लिए एक माझी चाहिए और वो माझी हैं गुरु। 'नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरें पार?' नाव तो मिल गई है लेकिन जब तक माझी नहीं है तब तक नदी को पार कैसे करोगे? तो हमें गुरु रूपी माझी को खोजना होगा, गुरु के द्वार पर जाना होगा। 'लगे नहीं बैराग यार कैसे के पावे?' हमारा सारा रस संसार में है। हम गुरु को कहां खोजते हैं? हम तो ऐसे साथियों को खोजते हैं जो हमारी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने में सहयोगी बनें, जो हमारी कामनाओं को भड़काएं।

हम सत्संग में कहां जाते हैं? 'छूटी डगमग नाहिं संत को वचन न माने' संत के उपदेश को नहीं मानते हैं। हमारे भीतर संतों के प्रति विश्वास ही नहीं है। श्रद्धा है, लेकिन कुसंग पर। एक डगमगाहट हमारे भीतर हमेशा मौजूद रहती है, हम सदा द्वंद में जीते हैं। हमें जाना कहां है? यही पता नहीं है। 'मूरख तजे विवेक अपनी चतुराई में'। अपने में विवेक नहीं जन्माते, अपनी चालाकी को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

कहते है पलटू साहब 'सद्गुरु शब्द का तनिक न करे विचार'। सद्गुरु के पास जाओ, सद्गुरु ही शब्द–रहित–शब्द सुनवाता है, उस निशब्द में डूबने पर गोविंद से मिलन होता है और जीवन में आनंद के फूल खिल उठते हैं। उसके बाद परमात्मा द्वारा दिए गए इस हीरे जैसे तन–मन का हम पूरा–पूरा सदुपयोग करते हैं। फिर जब हम मृत्यु के बाद प्रभु के द्वार पर जाते हैं तो हंसते हुए जाते हैं। और हम उसे द्वार पर स्वीकारे जाते हैं।

बाउल फकीर का यह सारगर्भित संदेश हृदयंगम करके रखना। यह गीत, कविता या साहित्य रचने के उद्देश्य से नहीं लिखा गया है। यह तो बाउल के आनंद–अतिरेक का प्रवाह है। उसकी करुणा अभिव्यक्त हुई है– ताकि जो उसने जाना है, वही सब जान सकें। हर व्यक्ति प्रभु को, सच्चिदानंद को पाने का अधिकारी है। जागो, चेतो। वैसे भी बहुत देर हुई, बहुत अशर्फियों को कंकड़–पत्थर समझकर फेंक चुके!

(प्रवचन – 5)

विशुद्ध भक्ति से प्रभु-मिलन

मोन रे, शामान्नो कि तारे पाय।
शुद्धो प्रेम भोक्तिर बौश दौयामौय।।

कृष्णेर आनोन्दो–पूरे
कामी लोभी जेते नारे
शुद्धो भोक्ति भौक्तेर द्वारे
शे चौरोन–कौमोल निकौटे जाय।।

बांछा थाकले शिद्धि मुक्ति
तारे बौले हेतु–भोक्ति
नि–हेतु भौक्तैर रोति
शौबे मात्रो दीननाथेर पाय।।

ब्रोजेर निगूढ़ तौत्तो गोसाई
रूपेरे शौब जानालो ताई
लालोन बौले मोर शाद्धो नाई
शे दौले जे मौतो रोशिक मौहाशौय।।

रे मन! सामान्य जन उस परमात्मा को क्या जान पायेगा? परमात्मा तो स्वयं इतना दयालु है कि वह विशुद्ध प्रेम–भक्ति के वश में बंधा है। उसे बस शुद्ध प्रेम–भक्ति से ही पाया जा सकता है।

उस परमानंद धाम में कामी और लोभी के लिए कोई स्थान नहीं है। भक्त गोविंद को शुद्ध भक्ति से प्राप्त करते हैं। गोविंद के चरण कमल प्रेम–भक्ति से ही मिलते हैं।

कामना से जो सिद्धि मिलती है उसे स्वार्थपूर्ण भक्ति कहेंगे। लेकिन निष्कामना से परमात्मा को ही भक्त पा लेता है।

लालन साईं कहते हैं कि इस निर्गुण तत्व को तू जान ले। साधना से नाम–रस को जान ले, जो कि तेरे आत्म स्वरूप में ही बसा है।

मोन रे, शामान्नो कि तारे पाय।
शुद्धो प्रेम भोक्तिर बौश दौयामौय।।

रे मन! सामान्य जन उस परमात्मा को क्या जान पायेगा? क्योंकि सामान्य यानी असत्यों में उलझा जन तो परम सत्य को जानना ही नहीं चाहता। उसके भीतर की चेतना

अभी बहिर्मुखी है, वह बाहर–बाहर को दौड़ रही है। उसका रस भ्रांतियों में है, संसार के प्रेम में वह उलझा हुआ है। उसे यश से प्रेम है, उसे पद से प्रेम है, उसे चीजों से प्रेम है, उसे लोगों से प्रेम है, अर्थात् उसका प्रेम निरंतर बाहर की ओर बह रहा है। और स्वयं के अंदर विराजमान परमात्मा भला कैसे मिल सकता है? जब चेतना अंतर्मुखी हो जाए, जब प्रेम भीतर की ओर लौटे अर्थात् जीवन ऊर्जा की धा–रा, रा–धा बन जाए तभी राधा का कृष्ण से मिलन संभव है। वस्तुतः सामान्य जन परमात्मा से विमुख है, विपरीत दिशा में वह गति कर रहा है।

अगर कोई परमात्मा के बारे में प्रश्न भी पूछता है तो बस, कौतूहलवश! जैसे वह बौद्धिक ज्ञान द्वारा अन्य चीजें पाने के लिए निकलता है, ऐसे ही वह चाहता है कि परमात्मा के बारे में भी जान लिया जाए। बस जानकारी की खातिर वह परमात्मा में उत्सुकता दिखाता है। जैसे कोई बच्चा प्रश्न यूं ही सवाल पूछता रहता है, बस वैसा ही उथला उसका प्रश्न है कि परमात्मा है या नहीं? उससे कैसे मिलन हो? यह कोई गहरी प्यास नहीं है, उसके प्राणों को उत्कंठा नहीं है। और जब तक यह प्राणों की तड़प न बने तब तक परमात्मा से मिलना संभव नहीं है।

अधिकतर लोग तो बचकाने कौतूहल में जीते हैं। कुछ थोड़े से परिपक्व चित्त वालों के भीतर जिज्ञासा जन्मनी शुरू होती है। अब सचमुच जानना है, इसके लिए कुछ दांव पर लगाने भी तैयार हैं। अत्यंत कम व्यक्तियों के हृदय में जिज्ञासा से एक कदम और आगे– मुमूक्षा पैदा होती है। अब केवल जानना ही नहीं, वही हो जाने की अभीप्सा है। एक रूपांतरण से गुजरने की तैयारी, प्राणों में प्यास इतनी तीव्र कि अब प्रभु के बिना जिया नहीं जा सकता! ऐसा जीवन–मरण का सवाल हो जाए, और साथ में गहन प्रतीक्षा–भाव हो, सिर्फ तभी परमात्मा को पाना संभव होता है।

वो आ तो जाएं मगर इंतजार ही कम है,
वो बेवफा तो नहीं, मेरा प्यार ही कम है।
मैं कैसे मान लूं उस पर कोई असर ही न हो,
ये दिल तड़फता रहे और उसे खबर ही न हो।
ये दिल खुदा की कसम बेकरार ही कम है,
वो आ तो जाएं मगर इंतजार ही कम है।

अभी प्यास ही कम है, अभी बेकरारी ही नहीं है! सारी प्यास बाहर की ओर उन्मुख है। जिसकी प्यास है, तलाश है, वही मिलता है। हमारी प्यास किस दिशा में लगी है? हमारी चाहत है कि हमें प्रेम मिल जाए दुनिया से, लोग हमें प्रेम दें, आदर दें; बस, इतनी ही तमन्ना

है। जगत में प्रीति के चार रूप दिखाई देते हैं। उन्हें थोड़ा समझ लें।

प्रथम– जब प्रीति अपने से छोटों में बहती है तो वह वात्सल्य है। हम बच्चों से प्रेम करते हैं वह स्नेह के रूप में होता है। हमारी प्रीति की ऊर्जा उनकी ओर बह रही है जिन्हें सहारे की आवश्यकता है, जो कमजोर हैं। द्वितीय– हम अपने बराबरी वालों से मित्रता करते हैं, जिससे हमें लगाव हुआ, हम उसे प्रेमपात्र कहते हैं। भाई–भाई, भाई–बहन, दोस्त, पड़ोसी, सहपाठी, सहकर्मी, प्रेमी–प्रमिका, पति–पत्नी के बीच, समान तल वालों के बीच मैत्री। कभी प्रेम, कभी कलह। थोड़ा सुख, काफी दुख। फूल कम, कांटे ज्यादा।

सामान्य जन का प्रेम केवल इन्हीं दो रूपों तक जाता है। उन्हें प्रतीत होता है कि ये जो प्रेम है, ये हमारी ऊर्जा को खींच रहा है, हमारी शक्ति को नष्ट कर रहा है। इसी संघर्षमय प्रीति में हम उलझे रहते हैं। प्रेम एक उलझाव बन जाता है। लगता है कि इसने हमें आनंद से तोड़ दिया है और उसके कारण हम प्रेम के विरोध में हो जाते हैं। क्रमशः संबंधों में रहते हुए, हम संसार के ही विरोध में हो जाते हैं। कुछ लोग भगोड़े बनकर त्यागी–तपस्वी हो जाते हैं लेकिन संसार से विमुख होकर भी परमात्मा नहीं मिलता है। न गृहस्थ को न संन्यस्थ को।

बाउल फकीर कहते हैं कि संसार में रहकर ही प्रेम का शुद्धिकरण करना होगा। प्रीति को अंतमुर्खी दिशा देनी होगी।

तृतीय रूप है– श्रद्धा, और चतुर्थ रूप है– भक्ति। माना कि अशुद्ध सोने से दुख मिलता है, किंतु उसे छोड़कर पलायन करने से आनंद नहीं घट जाएगा, अशुद्ध सोना भी हाथ से चला जाएगा। प्रेम रूपी सोने में मिश्रित काम, लोभ, मोह, मालकियत, ईर्ष्या आदि अशुद्धियों को जलाना है। यही धर्म की साधना है।

मैंने सुना है कि एक युवक एक सूफी फकीर के पास जाकर कहता है कि मुझे परमात्मा से मिलवा दीजिए, अब मैं एक पल भी उसके बिना नहीं जी सकता, मुझे प्रभु–दर्शन करा दीजिए। फकीर ने उसकी आंखों में देखा– अभीप्सा तो थी, सघन प्यास थी, फकीर को भी दया आ गई। मगर युवक अति–कठोर सा नजर आ रहा था। फकीर ने पूछा कि बस, मेरे एक प्रश्न का उत्तर दे दो कि क्या तुमने कभी किसी को प्रेम किया है?

अभिमानी युवक बोला कि मैं तो सारा जीवन भगवान को भजता रहा, प्रेम–व्रेम के लिए मुझे फुर्सत कहां? फकीर ने उससे एक बार फिर कहा कि गौर से सोच लो, और बताओ कि क्या कभी तुमने किसी से भी प्रेम किया है; अपनी पत्नी से, बच्चों से, माता–पिता या किसी से भी? युवक बोला मुझे इन छुद्र सांसारिक चीजों के लिए वक्त ही नहीं मिला। मेरे प्राणों की प्यास तो परमात्मा को पाने की है इसलिए मैंने व्यक्तियों की उपेक्षा कर दी। परिवार के लिए समय ही नहीं दिया। समाज से दूर–दूर ही रहा हूं।

फकीर चुप रहा गया। उसकी आंखों में आंसू आ गए और वह बोला कि माफ करना भाई, मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता हूं। काश! तुमने अपनी पत्नी से या मित्र से या अपनी मां से प्यार किया होता, किसी वृक्ष को या पंक्षी को ही चाहा होता तो उसी प्रेम को मैं ऊर्ध्वगामी दिशा दे देता। तुम्हारे पास अशुद्ध सोना तक नहीं है, तो शुद्ध सोना कैसे करूं!

जो प्रेम संसार की ओर लगा है जब उसे बेहतर आयाम मिलता है, जब हम किसी गुरु-चरणों के प्रेम में पड़ते हैं तो श्रद्धा का जन्म होता है। अब इस प्रेम को उर्ध्वगमन की दिशा मिली, अब भक्ति के आकाश में भी यह प्रेम उड़ सकता है। यह प्रीति जब समस्त अस्तित्व के प्रति लगती है तो भक्ति बन जाती है। सूफी फकीर ने कहा कि काश तुमने एक भी प्रेम की बूंद चखी होती तो मैं उसे रत्ती-रत्ती करके सागर तक पहुंचा देता।

गुरु के चरणों में लगा प्रेम श्रद्धा है। विकसित होते-होते एक दिन सारी सृष्टि के संग प्रेम लग जाता है, पूरी प्रकृति से हो जाता है तब भक्ति कहलाता है। फिर प्रेम अकेन्द्रित हो जाता है, पूरे जगत के प्रति हो जाता है। ऐसी भक्ति से परमात्मा मिलता है। ऋषि शांडिल्य कहते हैं- अथातो भक्ति जिज्ञासा!

जब प्रेम संसार से तृप्त हो गया, कह लो कि बात समझ में आ गई कि संसार में मैं जिस प्रेम को खोजता हूं वह संसार में नहीं है और गुरु के द्वार की तरफ चल पड़ा। वात्सल्य एवं मित्रता से श्रद्धा की ओर कदम उठे। फिर गुरु से गोविंद तक की यात्रा की, भक्ति जन्मी, तब प्रभु-मिलाप होता है। इसलिए बाउल ठीक कहते हैं कि सामान्य जन परमात्मा को नहीं पा सकते। इसके लिए अंतर्यात्रा करनी होगी, प्रेम को निखारना, संवारना होगा।

उस परमानंद धाम में कामी और लोभी के लिए कोई स्थान नहीं है। उसे परमानंद क्यों पुकारा गया है? आइए, इस संदर्भ में परमगुरु ओशो को सुनते हैं-

'एक बात ख्याल में रखना, आनंद सत्य की परिभाषा है। जहां से आनंद मिले वही सत्य है। इसीलिए तो हमने परमात्मा को सच्चिदानंद कहा, आनंद उसकी आखिरी परिभाषा है। सत से भी ऊपर, चित से भी ऊपर आनंद को रखा और सच्चिदानंद कहा। सत्य एक सीढ़ी नीचे है, चित और एक सीढ़ी नीचे, आनंद परम है। जहां से आनंद बहे, जहां से आनंद मिले फिर तुम चिंता मत करना, सत्य के करीब ही हो। जैसे कोई बगीचे के करीब आता है तो हवाएं ठंडी हो जाती हैं, पक्षियों के गीत सुनाई पड़ने लगते हैं, शीतलता अनुभव होने लगती है, बगीचा दिखाई भी न पड़े तो भी अनुभव में आने लगता है कि राह ठीक है, बगीचे की तरफ ही पहुंच रहे हैं।

इसी प्रकार, जैसे ही तुम सत्य की तरफ पहुंचने लगते हो, आनंद झरता है और मन शीतल होने लगता है, संतुलन आने लगता है, एक उमंग घेर लेती है अकारण ही। कोई

कारण भी दिखाई नहीं पड़ता है। न तो धंधे में कोई बड़ा लाभ हुआ है, न कोई बड़ा पद मिला है लेकिन अकारण कोई उमंग है कि भीतर कोई नाचे जा रहा है! तो दुनिया कहेगी कि कहीं पागल तो नहीं हो गया। ये बड़ी अजीब दुनिया है, यहां केवल पागल ही प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं। इसलिए भीड़ कहेगी कि कहीं पागल तो नहीं हो गया क्योंकि पागलों के सिवाय कभी किसी को प्रसन्न देखा ही नहीं। यहां हजार कारण होते हैं तब भी आदमी प्रसन्न नहीं होता।'

कृष्णेर आनोन्दो–पूरे
कामी लोभीं जेते नारे
शुद्धो भोक्ति भौक्तेर द्वारे
शे चौरोन–कौमोल निकौटे जाय।।

उस आनंद लोक में कामी–लोभी के लिए स्थान नहीं है। भक्त उसे शुद्ध प्रीति के द्वारा प्राप्त करता है। प्रार्थना करने वाले, भगवान से याचना करने वाले लोगो, सावधान! कुछ भी मांगा कि चूके। निष्कामी और अलोभी ही शांत व आनंदित हो सकता है। वह सम्राट तुल्य है। वासना से भरा भिखारी तो दुखी ही रहेगा। नारद के प्रसिद्ध वचन हैं– भक्ति कामनायुक्त नहीं है, क्योंकि यह निरोधस्वरूपा है।

कामना क्या है? संसार यानि कामना। संसार का ठीक से अर्थ समझें। संसार हमारे भीतर ही है लेकिन लोग सोचते हैं कि संसार को छोड़कर चले जाएं तो हम वीतकाम हो जाएंगे, तो हमारे भीतर वैराग्य फलित हो जाएगा और भक्ति का उदय हो जाएगा। संसार छोड़कर लोग जाते हैं तो मकान छूट जाता है लेकिन मोह नहीं छूटता। धन को हाथ न लगाने से लोभ नहीं मिटेगा। पत्नी को छोड़ देने से काम–वासना नहीं छूटेगी। बच्चों को छोड़ देने से मोह–भाव नहीं छूटेगा। सब छोड़ दो फिर भी संसार नहीं छूटेगा, क्योंकि संसार का सूत्र हमारे भीतर है। जहां जाएंगे, हम वहीं संसार निर्मित कर लेंगे, जैसे मकड़ी अपनी भीतर की लार से जाला बुनती है। फिर–फिर अपने जाल में फंसते जाएंगे।

संक्षेप में समझ लो– संसार यानि मांग! जब तक हम मांग रहे हैं, जब तक हमारी अपेक्षा है, जब तक हमारी कामना है तब तक संसार है। और जब तक संसार है तब तक ब्रह्म नहीं है। निश्चित ही संसार के तो पार जाना है लेकिन यह संसार है कहां? मकान–दुकान, खेत–खलिहान, नदी–पर्वतों में? नहीं, यह संसार है मांगने वाली वृत्ति में। कामी, लोभी जेते नारे– जिसके भीतर वासना है, जिसके भीतर लालच है वह परमात्मा के राज्य तक नहीं जा सकता। उस साम्राज्य में केवल सम्राटों का प्रवेश संभव है– जब भीतर मांग समाप्त हो जाती है, जब एक आंतरिक तृप्ति, संतुष्टि आ जाती है, जब हमारी प्रार्थना धन्यवाद बन जाती है। जब हम मांगने के लिए परमात्मा के द्वार पर नहीं रोते हैं। अश्रु भी बहाते हैं तो अहोभाव में

डूबकर! जब हम आनंद के अतिरेक में रोते हैं, जब हमारे भीतर परमात्मा के लिए प्रेम बहता है, ऐसा अनुग्रह भाव बहता है कि हम आंसू को सम्हाल नहीं पाते। ऐसी होती है शुद्ध भक्ति और इससे परमात्मा मिलता है।

कबीरदास जी रोज चादर बुनते थे और बाजार जाते थे। किसी ने उनसे पूछा कि प्रार्थना क्या है? उन्होंने कहानी सुनाई कि एक दिन बाजार के एक कोने में बैठकर चादर बेच रहे थे। देखते हैं कि एक बच्चा अपनी मां के साथ बाजार आता है, मां सब्जी खरीदने में व्यस्त है और बच्चा मां के पीछे–पीछे चल रहा है। बच्चे को भी बहुत मजा आ रहा है। कबीरदास जी यह दृश्य देख रहे होते हैं। अचानक बच्चे को एक बिल्ली दिखाई पड़ती है, बच्चा बिल्ली को देखने में व्यस्त हो जाता है और बिल्ली के साथ खेलने लगता है। और मां सब्जी खरीदने में व्यस्त है। वह थोड़ी आगे निकल जाती है और बच्चे को भूल जाती है। बच्चा बिल्ली को देखकर मां को भूल गया, अचानक खेलते–खेलते बिल्ली दूसरे घर में छलांग लगा देती है। जब बिल्ली भाग गई तो उसे ख्याल आया कि अरे! मैं तो अकेला हूं, मां कहां है? बेचारा चीख मारकर रोने लगता है। कबीरदास जी यह नजारा दूर से देख रहे होते हैं। वे चलकर आते हैं, उस बच्चे का हाथ पकड़ते हैं और उसे उसकी मां तक ले जाते हैं।

ठीक ऐसे ही संसार में जीते–जीते एक दिन अचानक हमारे भीतर से चीख निकल जाती है कि अरे! मैं कैसे इतने दिनों तक इस संसार के खिलौनों में उलझा रहा, मेरी परम–मां कहां है, परमात्मा कहां है? मैं कहां छूट गया, मेरा उद्‌गम कहां है, मैं कहां से आया हूं, किधर जा रहा हूं? जब भीतर ऐसी मुमुक्षा जग जाए तो यही असली धर्म की खोज की शुरुआत है। इस दशा में निकले हुए आंसू प्रार्थना बन जाते हैं। जब हम मांग नहीं रहे, जब हमें विरह की अनुभूति हुई। विरह से उत्तप्त हृदय में प्रभु–कृपा की बरसात होती है।

बांछा थाकले शिद्धि मुक्ति
तारे बौले हेतु–भोक्ति
नि–हेतु भौक्तैर रोति
शौबे मात्रो दीननाथेर पाय।।

कामना से जो सिद्धियां मिलती हैं उसे स्वार्थपूर्ण भक्ति कहेंगे। अपेक्षाएं भीतर हों और हम भक्ति में डूब रहे हों तो उससे परमात्मा नहीं मिल सकता; हां, रिद्धि–सिद्धि मिल सकती हैं। वह कुछ ऐसी ही हुई कि किसी रानी को साम्राज्य तो मिल गया लेकिन अपना पति, राजा नहीं मिला। क्या फायदा ऐसे साम्राज्य का? ऐसी सिद्धि का क्या लाभ जिससे मालिक न मिला, उसका सामान मिल गया?

परम मालिक शुद्ध भक्ति से मिलता है। कामना जब तक भीतर है तब तक परमात्मा मिल

जाए, ऐसा संभव ही नहीं है। कामना के साथ अगर भक्ति की तो निश्चितरूप से सिद्धि मिल जाएगी। रावण को भी सिद्धियां मिल गईं लेकिन परमात्मा नहीं मिला। वह दिव्यात्मा नहीं हो गया, शक्तियां पाकर वह राक्षस से और भयंकर राक्षस हो गया। शक्ति का क्या करोगे? दुर्वासा को मिल गई थीं बहुत शक्ति। पहले कमजोर क्रोधी था, फिर महाक्रोधी हो गया। जरा सी बात पर अभिशाप देने को तैयार! उसकी भक्ति उसके लिए वरदान न बन सकी।

सहज मिले तो दूध सम, मांगे मिले सो पानी।
कहै कबीर वह रक्त सम, जामे ऐचा तानी।।

सहज रहो, हो सके तो कोई मांग नहीं करो और नहीं हो सके तो परमात्मा को ही मांगो। और सर्वोत्तम तो यह है कि बस प्रार्थनापूर्ण हृदय हो जाए। अकारण धन्यवाद भाव में, निष्प्रयोजन अहोभाव में आंसू बहें! यही शुद्ध भक्ति है। कितना मिला है, बिना मांगे यह प्यारा जीवन मिला है! नाचो, झूमो, गाओ, उत्सव मनाओ। और देखो.... परमात्मा मिला ही हुआ है! कबीर साहब अन्यत्र कहते हैं– 'कस्तूरी कुंडल बसे मृग खोजे वन मांहि।' कहां खोजते हो? वह भीतर मौजूद है। रविदास जी ने भी कुछ ऐसा ही गाया है–

गिरि बन काहे खोजन जाई, घट अभिअन्तर खोजहु भाई।।
पुहुप मधे ज्यूं बास बसत है, त्यूं सब घट रमहिं रघुराई।
बाहरिं खोजत जनम सिरानों, मृग त्रिस्ना रह्यौ उरझाई।।
राम चरन मंह थिर मन राखहु, रिंदै कंवल बसै रघुराई।।
कहिं रविदास सुनहु रे संतो, राम भजन विनु किन गति पाई।।

लालन साईं कहते हैं कि इस निर्गुण तत्व को तू जान ले। नाम–रस को पहचान ले, यह तो तेरे आत्म स्वरूप में ही बसा है। परमात्मा स्वर्ग में स्वर्ण–सिंहासन पर बैठा कोई व्यक्ति नहीं, हमारे हृदय में विराजमान चैतन्य है। मांगने वाले की नजर बाहर केंद्रित रहती है, अतः वह स्वरूप से चूक जाता है। चेतना में गूंजते नाम–रस में डूबो। साक्षी बनकर अंतर्संगीत को सुनो। बस, यही अध्यात्म साधना का सरल–सा रहस्य है। धन्यवाद।

(प्रवचन – 6)

प्रभु की पुकार कैसे सुनें?

तारे धोरबो कि शाधोने।
ब्रोम्हा आदि पाय ना जारे जूगजूगांतर बोशे ध्याने।।
बेद–पुराणे पाबे नारे निरूप नोइराकारे,
निराकारे ज्योतिर्मोय आछे बोशे नित्योस्थाने।।
औनादिर आदि मानुष आछे शे गोपोने,
शेई मानुष शाध्यो कौरे राधाकृष्ण वृन्दा बोने।।
चिन्तामोनि–भूमिवृक्खो–कौल्पो एके बौले –
गोपी कृपा जार होयेछे, शेई पेयेछे रौत्नोधौन
शोखी–रूपे जे देखेछे गुरुर ध्याने
पांज बौले शेई रोशिक दाशी हौबे श्री चौरोने।।

मैं उस परमात्मा को कैसे पाउँ, जिसे पाने के लिए ब्रह्मा आदि भी युग–युग से ध्यान में रहते हैं? वेद और पुराण में भी उसे पाया नहीं जा सकता क्योंकि वह तो निराकार, निर्गुण, ज्योतिर्मय स्वरूप है। वो अंतर्मन में ही वास करता है। उसे देखने के लिए निर्मल, प्रेममयी आँखें चाहिये।

मानुष रूप में वे अनादि, राधा–कृष्ण के रूप में वृंदावन में विचरण करते रहे। उसे ऐसा कल्पतरु कहते हैं जिसे पाकर सारी इच्छायें ही उसमें सिमट जाती है। गोपीयों जैसा सहज सरल होकर ही उस राम–रतन–धन को पाया जा सकता है। पंज शाह कहते हैं जो गुरु को ध्यान में रखकर ही कार्य करते हैं उस पर गुरु अपनी कृपा दृष्टि बरसाते हैं। गुरु चरणों को ही सारतत्व मानो तभी राम रतन–धन की प्राप्ति होगी।

तारे धोरबो कि शाधोने।
ब्रोम्हा आदि पाय ना जारे जूगजूगांतर बोशे ध्याने।।

लोग परमात्मा की तलाश में हैं कि भगवान कैसे मिले, भगवान का दर्शन कैसे हो, भगवान की आवाज कैसे सुनाई दे। लोग विनती करते हैं, जगह–जगह मंदिर तीर्थस्थलों में जाकर विनती करते हैं कि भगवान दर्शन दो! लेकिन अगर भगवान सामने भी खड़े हो जाएं तो हम देखने में सक्षम नहीं होंगे, क्योंकि हमारे आंखों पर विचारों का पर्दा है, धारणाओं का पर्दा है। भगवान अगर हमारे पास आकर कुछ कहे तो हम सुन नहीं सकते। क्योंकि हमारे भीतर लगातार एक शोरगुल चल रहा है विचारों का। परमात्मा तो पुकार ही रहा है, प्रतिपल बुला ही रहा है, प्रतिपल वह मौजूद ही है। बिल्कुल हमारे आस–पास है, लेकिन हम देख–सुन नहीं पाते। क्योंकि परमात्मा चिल्लाता नहीं है, परमात्मा तो फुसफुसाता है। उसकी आवाज बहुत धीमी है, उसको सुनने के लिए हमें शांत होना पड़ेगा, उसके लिए हमें निर्विचार स्थिति में जाना पड़ेगा, उसके लिए हमें संवेदनशील और प्रेमपूर्ण होना पड़ेगा और हम पाएंगे कि हम परमात्मा से घिरे हैं। वह तो प्रतिपल

पुकार ही रहा है हमें, लेकिन हम सुन नहीं रहे हैं। उसके दर्शन तो प्रतिपल हो सकते हैं लेकिन हम तो अपनी आंखों को बंद किए हुए बैठे हैं। हम अपनी वासनाग्रस्त आंखों से कुछ और ही देख रहे हैं। अपने कामनायुक्त कानों से कुछ और ही सुन रहे हैं। उसे कैसे सुनें? इस संबंध में परमगुरु ओशो कहते हैं–

'प्रभु की पुकार कैसे सुनाई दे यह प्रश्न गूढ़ है। प्रभु को पुकारें कैसे यह प्रश्न तो बहुत लोग कहते हैं, लेकिन प्रभु की पुकार कैसे सुनाई दे यह कभी–कभी कोई पूछता है इसलिए प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, विरल है, थोड़ा बेजोड़ है और सत्य के ज्यादा करीब है। असली सवाल प्रभु को पुकारने का नहीं है, हमारे पास जबा़न कहां जिससे हम प्रभु को पुकारें और हमारी वाणी की सामर्थ्य ही कितनी है, जाएगी थोड़ी दूर और खो जाएगी शून्य में। और जो भी हम कहेंगे उसमें कहीं न कहीं हमारी वासना की छाप होगी। हमारी प्रार्थनाएं हमारी वासनाएं ही हैं और वासनाएं उस तक कैसे पहुंचेंगी। प्रार्थना में वासना छिपी हो तो जैसे पक्षी के कंठ में किसी ने पत्थर बांध दिया हो, अब उस पक्षी की उड़ान संभव न हो सकेगी। और हमारी प्रार्थनाएं तो वासनाओं से भरी ही होती हैं। प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांगना हो गया, प्रार्थी का अर्थ हो गया मांगने वाला क्योंकि प्रार्थना के नाम से हम सदा ही मांगते रहे हैं। इसलिए हम कैसे प्रार्थना करें इससे झूठा धर्म पैदा होता है, यह सवाल ज्यादा गहरा है।

प्रभु की पुकार कैसे सुनाई दे, प्रभु तो पुकार ही रहा है सिर्फ मस्तिष्क हमारे इतने शोरगुल से भरे हैं कि उसकी धीमी सी पुकार, उसकी सूक्ष्म सी पुकार, उसकी अतिसूक्ष्म पुकार हमें सुनाई नहीं पड़ती। नक्कारखाने में उसकी वीणा के स्वर खो जाते हैं। वह वीणावादक है, उसके स्वर बारीक हैं, नाजुक हैं, उसके स्वरों को सुनने के लिए शून्यचित्त चाहिए। जितना शांत चित्त होगा, जितना निर्विचार चित्त होगा, उतनी ही संभावना बढ़ जाएगी और उसके स्वर सुनाई पड़ने लगेंगे। निर्विचार चित्त में परमात्मा तत्क्षण उतर आता है, जैसे द्वार पर ही खड़ा था, प्रतीक्षा ही कर रहा था कि कब हम निर्विचार हो जाएं और कब वह भीतर आ जाए।'

वेद–पुराणे पाबे नारे निरूप नोइराकारे,
निराकारे ज्योतिर्मोय आछे बोशे नित्योस्थाने।।

वेद–पुराण में हम उसे नहीं पा सकते क्योंकि वह निराकार है, ज्योतिर्मय स्वरूप है, हमारे भीतर ही मौजूद है। वेद–पुराण में क्यों नहीं पा सकते? कुछ ऐसे ही समझो कि शास्त्रादि के अध्ययन को जैसे कोई पागल रेलवे टाइम–टेबल को पढ़े, कंठस्थ कर ले और कहे कि मैं तो पूरे देश की यात्रा कर डाला और सारे मनोरम दृश्य देख लिए। कुछ ऐसा ही होगा यदि हम वेद–पुराण को पढ़कर कहें कि हमने परमात्मा के दर्शन कर लिए, श्रवण कर लिए या उसकी अनुभूति कर ली। ठीक रेलवे टाइम–टेबल के पाठक जैसी हमारी हालत हो जाएगी। या ऐसा कहें कि पाकशास्त्र की खूब सारी रैसिपियों को पढ़कर, यादकर, रटकर हम कहें कि सभी प्रकार के भोजन कर लिए! क्या यह भोजन पोषण और तृप्ति दे सकता

है? नहीं दे सकता। ऐसे ही वेद–पुराण भगवान की तृप्ति नहीं दे सकता।

हां, काम तो आते हैं वेद–पुराण क्योंकि जब हमें अनुभूति होगी तो वे उसके सबूत बन जाते हैं। क्योंकि फिर प्रतीति होती है कि जो अनुभूति हमने की है वही अनुभूति अन्य ऋषि–मुनियों ने भी की थी। बाद में यही सहारा मिलता है, अपना स्वानुभव प्रमाणित होता है ग्रंथों के द्वारा। स्वानुभव के पूर्व ग्रंथ उपयोगी नहीं हैं।

शंकराचार्य, जिन्होंने खूब सारे वेदों का अध्ययन किया, अनेक ग्रंथ रचे, वही मजाक उड़ाते हैं। वे कहते हैं कि भज गोविंदम्, भज गोविंदम्, भज गोविंदम् मूढ़मते। संप्राप्ते सन्निहते काले नहि नहि रक्षते डूम किं करणे। अगर तुम वेद का ज्ञान प्राप्त कर भी लेते हो तो क्या यह मौत के समय काम आएगा? वह उधार जानकारी तुम्हारे किसी काम नहीं आने वाली!

धर्म पुस्तक हैं संतों की पाती, अब न दूल्हा रहा न बराती,
आदमी किंतु अब तक बंधा है, आग थोड़ी है ज्यादा धुआं है।

धर्म के नाम पर धुआं ही धुआं है। लेकिन यदि धुआं है तो कभी आग भी थी। लेकिन आज उस धुएं के पार जाने के लिए कोई उपाय नहीं है। कोई पार कराने वाला चाहिए, कोई राह बताने वाला चाहिए।

भगवान को देखने के लिए ब्रह्मा भी ध्यान में बैठते हैं। उसे देखने के लिए निर्मल, प्रेममयी आंखें चाहिए। आंखों पर जो पर्दा है, आंखों पर जो ज्ञान की पट्टी है, धारणाओं की पट्टी है उस पट्टी को हटाना होगा, उस चश्मे को हटाना होगा। जब कामनामुक्त, निर्मल आंखों से हम इस जगत को देखते हैं तो यही जगत परमात्मा बन जाता है।

ओशो कहते है कि प्रेम की आंखों से देखा हुआ जगत परमात्मा है और प्रेम रहित आंखों से देखा गया परमात्मा संसार है। कोई भी प्रोजेक्शन नहीं चाहिए। प्रक्षेपण छोड़ो, परमात्मा अभी और यहीं मौजूद है। गेस्टाल्ट वाला चित्र आप लोगों ने देखा होगा जो कि प्रायः साइकोलॉजी की पुस्तकों में होता है। उसमें एक ही चित्र में दो चीजें दिखाई देती हैं। कभी उसमें सुंदर युवती दिखाई देती है और थोड़े ही देर में बूढ़ी औरत दिखने लगती है। यही गेस्टाल्ट साइकोलॉजी है। ऐसे ही जब हम प्रेम की दृष्टि से देखते हैं तो हमारा गेस्टाल्ट ही बदल जाता है, एक साधारण सा व्यक्ति भी ईश्वर दिखाई देने लगता है। कण–कण में भगवान! सब कुछ असाधारण हो जाता है!

मैंने सुना है कि एक बार एक ट्रक खराब हो गया, दूसरा ट्रक उसको टोचन करके ले जा रहा था। चंदूलाल उसे देखकर जोर–जोर से हंसने लगा। उसके मित्र ने कहा कि भाई इसमें हंसने की क्या बात है? चंदूलाल बोला– 'मुझे समझ में नहीं आ रहा कि इतनी छोटी–सी रस्सी को खींचने के लिए दो ट्रक क्यों लगे हैं? एक ट्रक रस्सी को खींच रहा है, दूसरा ट्रक रस्सी का धक्का मार रहा है!' यह गेस्टाल्ट की बात है, अपने–अपने विचारों के चश्मे से लोग देख रहे हैं।

चिन्तामोनि–भूमिवृक्खो–कौल्पो एके बौले –

गोपी कृपा जार होयेछे, शेई पेयेछे रौत्नोधौन

उसे ऐसा कल्पतरु कहते हैं जिसे पाकर सारी इच्छाएं सिमट जाती हैं। परमात्मा मिल जाए तो ऐसी तृप्ति हो जाती है कि फिर कोई इच्छाएं नहीं बचती हैं। इच्छाएं तो तभी तक होती हैं जब तक संतोष नहीं है। परमात्मा मिलते ही संतुष्टि आ जाती है।

सुनो यह घटना– एक फकीर से मिलने के लिए एक सम्राट आया। उस समय झोंपड़ी में फकीर नहीं था। सम्राट फकीर की पत्नी से विनती करता है कि मुझे फकीर से मिलवा दीजिए, मेरे भीतर परमात्मा से मिलने के लिए बहुत तड़फ है। पत्नी बोली कि आप प्रतीक्षा करें, मैं उन्हें बुलाकर लाती हूं। चूंकि पति घर पर नहीं है, खेत पर गया हुआ है तो वह सम्राट से कहती है कि थोड़ा इंतजार करिए मैं अपने पति को बुलाकर लाती हूं।

राजा ने कहा कि ठीक है, आप बुलाकर लाइए। लेकिन वह आंगन में बैठा नहीं, बस चलता ही रहा। पत्नी जाकर फकीर से कहती है कि एक सम्राट आपसे मिलने आया है और लगता है कि वह पागल है। फकीर ने पूछा कि क्या बात है, सम्राट पागल कैसे हो सकता है?

पत्नी ने बताया कि मैंने उसे इंतजार करने के लिए कहा लेकिन वह तो बैठा तक नहीं इतना बेचैन है, तो परमात्मा के लिए वह क्या प्रतीक्षा करेगा? फकीर ने प्रश्न किया– तुमने उसे बैठने के लिए क्या दिया? पत्नी ने कहा कि घर की सबसे सुंदर चटाई मैंने उसको बैठने के लिए दी। फकीर हंसने लगा, बोला कि पागल तू है! राजा तो राजा के योग्य आसन पर ही बैठेगा न, हम गरीबों की फटी–पुरानी, साधारण चटाई पर कैसे बैठेगा?

ऐसे ही हमारे भीतर की इच्छाएं हैं, ऐसे ही हमारे मन की अभीप्साएं हैं, जब तक परमात्मा की गोद ही इन्हें न मिल जाए, वे बैठने वाली नहीं। सच्चिदानंद रूपी आसन ही न मिल जाए तब तक बलवती इच्छाएं भला कैसे शांत होंगी! और जिस दिन परमात्मा रूपी कल्पतरु मिला, भीतर की सारी इच्छाएं सिमट गईं। ऐसी तृप्ति मिल जाती है कि फिर कुछ भी आकर्षित नहीं करता।

गोपी कृपा जार होयेछे, शेई पेयेछे रौत्नोधौन।

गोपियों जैसे सहज–सरल होकर ही उस राम रतन को पाया जा सकता है। सहजता, प्रामाणिकता धर्म की पहली शर्त है। जिसने भी पाया है परमात्मा को, सहज होकर पाया है, सरल होकर पाया है।

सरहपा और तिलोपा का नाम तो सबने सुना है। चौरासी सिद्ध हुए हैं इस परंपरा में। सरहपा–तिलोपा ने सहजता के गुणगान गाए हैं। ओशो भी कहते हैं, 'दि इजी इज राइट'। जो सुगम है, वही सत्य है। असत्य ही जटिल होता है, सत्य तो सरल ही हो सकता है।

एक झेन फकीर से किसी खोजी युवक ने पूछा कि बुद्धत्व के बाद आपके भीतर क्या परिवर्तन आया? आपकी दिनचर्या क्या है? झेन फकीर ने बताया कि जब नींद खुल जाती है तो सोकर उठ जाता हूं। जब भूख लगती है तो खाना खाता हूं। जब ऊर्जा जागती है तो काम करता हूं और जब तमस घेरता है तो फिर सो जाता हूं।

प्रश्नकर्ता युवक हंसने लगा कि फिर तुम में और हम में भेद क्या है?

झेन फकीर ने बोला कि बहुत बड़ा भेद है। काश तुम भी यही कर पाते कि जब नींद आती तो तुम भी सोते, जब भूख लगती तो तुम भी खाते! लेकिन तुम तो जब नींद आती है तो जागने का प्रयास करते हो, जब जागना होता है तब तुम सोने का प्रयास करते हो। समय देखकर भोजन करते हो, चाहे भूख लगी हो या नहीं। सहज दशा में कोई जीता ही नहीं है। काश, सहजता में जीने लगो तो भगवत्ता में जीने लगोगे।

सहजता क्या है? प्रतिक्रिया–शून्य स्वाभाविक स्थिति है, वह शांत–स्थिति हमारे भीतर है। अंतर्तम से जुड़कर हम सरल हो जाते हैं और उस सहजता में परम–ध्वनि सुनाई पड़ती है। उस सहजता में परमात्मा उतर आता है हमारे भीतर, जिसके लिए कबीरदास जी कहते हैं–

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन–दिन अधिक चली।
जहं–जहं डोलूं सो–सो परिक्रमा, जो कछु करूं सो सेवा।
जब सोऊं तो करूं दंडवत, पूजूं और न देवा।
साधो सहज समाधि भली।।

गुरु प्रताप जा दिन से जागी...पंज शाह कहते हैं जो गुरु को ध्यान में रखकर ही कार्य करते हैं वे सहज हो जाते हैं। उन पर गुरु अपनी कृपा बरसाते हैं। इस संबंध में शिवदयाल सिंह जी ने गाया है–

गुरु करो खोज कर भाई। बिन गुरु कोइ राह न पाई।।
संतन से प्रींत न धारी। क्यों उतरें भौजल पारी।।
भक्ति का भेद न जाना। गुरु को सतपुरुष न माना।।
गुरु सब को पार लगावें। जो जो उन चरन ध्यावें।।
अब चेतो समझो भाई। कर प्रींत गुरु संग आई।।
कह कर राधास्वामी गाई। करनी कर मिले बड़ाई।।

बाउल फकीरों का विशेष रूप से जोर है कि क्रियाकांडी, तपस्वी, दानी, सेवक, त्यागी या शास्त्रज्ञ बनने से नहीं, वरन विनम्र शिष्य होने से परमतत्व मिलेगा।

शोखी–रूपे जे देखेछे गुरुर ध्याने।
पांज बौले शेई रोशिक दाशी हौबे श्री चौरोने।।

शिष्यत्व प्रक्रिया है अहंभाव के विसर्जन की। अहंभाव के जाते ही ब्रह्मभाव अवतरित हो जाता है। इसलिए सदगुरु के श्री चरणों की इतनी महिमा कही जाती है। श्रद्धा पर इतना बल दिया जाता है। 'झूठा–मैं' गुरु–चरणों में समर्पित कर दो, 'सच्चा–मैं' प्रगट हो जाता है। 'झूठा–मैं' यानि अभिमान। 'सच्चा–मैं' यानि आत्मा। दो में से एक ही नजर आ सकता है। समर्पण–भाव गेस्टाल्ट बदल देता है। पांज बौले शेई रोशिक दाशी हौबे श्री चौरोने।।

(प्रवचन – 7)

अभी और यहीं है परमात्मा!

शुधू की आल्ला बोले डाकले तारे
पाबि ओरे मोन पागला।
जे भाबे आल्लाताला विषम लीला
त्रिजौगोते कोरछे खैला।।
कौतो जोन जौपे माला तुलशी–तौला,
हाते झोले मालार झोला,
आर कौतोजोन होरि बोलि मारे ताली,
नेचे गेये हौय मातेला।।
कौतो जौन हौय उदाशी तीर्थोबाशी,
मौक्काते दियाछे नेला,
केउ बा मोशजिदे बोशे तार उद्देशे
शौदाय कौरे आल्ला आल्ला।।
शौरूपे मानुष मिशे, शौरूप देशे
बोबाय कालाय नित्यो लीला
शौरूपेर भाब ना जेने चामोर किने
होच्छे कौतो गाजीर चेला।।
नित्योशेबाय नित्योलीला चौरोनमाला,
धौरा दिबे औधोर काला
पाँज ताई कौरे हेला घोटलो जाला,
कि हौबे निकाशेर बैला।।

रे मन पगले अल्ला–अल्ला बोलकर तू क्या पायेगा? अल्ला ताला अपनी अदभुत लीला रच रहे हैं। कितने ही लोग तुलसी मनके की माला जपते रहते हैं और कितने ही केवल हरि–हरि बोलकर मतवाले होकर नाचते हैं। कितने उदास होकर घर–द्वार तजकर मक्का या तीरथ चले जाते हैं। कोई मस्जिद में बैठकर अल्ला–अल्ला करते रहते हैं।

रे मन! अपने में हीं उस स्वरूप को जान ले, जहां गूंगा बोलता है और बहरा सुनता है। व्यर्थ में ही तू किसी गाजी का चेला बनेगा। गुरु–शरण की नित्य माला फेर। इसलिए पंज शाह कहते हैं कि व्यर्थ में समय न गंवा, गुरु–चरण में लगन लगा। वे ही उस काले–कन्हाई से अर्थात् परमात्मा से मिलायेंगे।

जो प्रतिपल, अकारण, सदा मौजूद है; उसे क्यों पुकारते हो? अरे पागल मन! तू अल्लाह–अल्लाह चिल्लाकर क्या अल्लाह को पा लेगा?

शुधू की आल्ला बोले डाकले तारे
पाबि ओरे मोन पागला।

वह तो सदा, सर्वत्र मौजूद है और तू पुकार में व्यस्त है। गोविंद की जो अनुभूति है वह

वर्तमान में होती है और हम जो हैं, सदा क्रियाओं में व्यस्त हैं। बाउल किसी क्रियाकाण्ड में भरोसा नहीं करते, बाउल हमें यथार्थ जगत से जोड़ते हैं। यथार्थ में जुड़ना, वर्तमान में जीना; यही बाउल की मूल जीवन–शैली है। और हम क्या करते हैं? कई मार्गों से, कई तरह से सदा व्यस्त हैं, क्रियाकाण्डों में उलझे हुए हैं। कर्मयोगी कर्म में और हठयोगी आसन–प्राणायामों में फंसे हैं। भक्तियोगी प्रार्थनाओं में और ज्ञानयोगी विचारों के जंजाल में उलझे हुए हैं लेकिन सदा ही व्यस्त हैं। जब हम अव्यस्त होंगे, जब हम वर्तमान के क्षण में आएंगे तब हम पाएंगे कि वह तो सर्वत्र मौजूद है।

कबीर साहब कहते हैं– 'न जाने तेरा साहिब कैसा है, मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे।' क्या तेरा साहिब बहरा है? इतनी जोर–जोर से पुकारने की जरूरत क्या है, क्या उसे सुनाई नहीं देता। चींटी के पग घूंघुर बाजे, फिर भी साहिब सुनता है। चींटी के पैर में घुंघरू भी बांध दिया जाए तब भी परमात्मा को सुनाई पड़ता है। और हम तो बहुत जोर–जोर से चीखते–चिल्लाते हैं और उसी पुकारने में हम उसे चूक जाते हैं। वह जो हमें पुकार रहा है, उसकी मद्धिम–सी पुकार को सुनने से हम चूक जाते हैं।

जे भाबे आल्लाताला विषम लीला
त्रिजौगोते कोरछे खैला।।

अगर परमात्मा को महसूस करना है तो इसी जगत में वह मौजूद है। सारा जीवन परमात्मा का ही अवतरण है। फूल खिलते हैं तो परमात्मा ही खिलता है, हवाएं बहती हैं तो परमात्मा ही बह रहा है, सुगंध उड़ती है तो परमात्मा की ही सुगंध है। नदियां बह रही हैं तो परमात्मा ही बह रहा है, वृक्ष बड़ा हो रहा है तो परमात्मा ही बड़ा हो रहा है। हम सर्वत्र परमात्मा की अनुभूति कर सकते हैं अगर हम शांत हो जाएं। बात है संवेदनशील होने की, बात है वर्तमान में आने की। एक प्रसिद्ध पुस्तक का नाम है 'द पावर आफ नाऊ' 'वर्तमान शक्तिमान' ये बहुत प्यारी पुस्तक है। वर्तमान के क्षण में आ जाओ और उस विराट ऊर्जा की अनुभूति से भर जाओगे।

किसी ने एक फकीर से पूछा कि परमात्मा को कहां खोजें? फकीर ने कहा, परमात्मा को अपने हृदय में, प्रेम–भाव में ही खोजो। परमात्मा गहन प्रेम में मिलेगा। मगर लोग तो प्रेम के नाम पर भी व्यस्त हैं, प्रेम और भक्ति के नाम पर भी न जाने कौन–कौन से क्रियाकाण्डों में लग जाते हैं।

एक समय की बात है, एक फकीर तीस साल तक साधना करता रहा, पहाड़ में; जहां कोई नहीं रहता था। लेकिन तीस साल गुजरने के बाद निराश हो गया, हताश हो गया। परमात्मा के दर्शन तो हुए नहीं, एक दिन सब छोड़कर उसने कहा कि अब ये मेरे वश की बात नहीं, इससे अच्छा तो मैं संसार में ही था, कम से कम अपने घर–परिवार में तो था।

वह वापिस जगत की ओर लौटने लगा। पहाड़ से उतरते हुए वह देखता है कि एक भेड़ बहुत लहूलुहान है, ज्यादा चोटिल है और दर्द से कराह रही है। उसे दया आ गई, वह रुक गया। उसने भेड़ का घाव साफ किया, उसे दवा लगाई, कुछ खिलाया–पिलाया, सेवा की।

अचानक वह पाता है कि परमात्मा के दर्शन हो गए। वह परमात्मा से कहता है कि तीस सालों तक पुकारते–पुकारते हम थक गए, क्या–क्या नहीं किया तुमसे मिलने के लिए! लेकिन तुमने मेरी बात नहीं सुनी। और आज जब मैं तुम्हें भूल गया, इस भेड़ की सेवा में संलग्न था तो तुम आ गए।

परमात्मा ने कहा कि पहली बार तुम यथार्थ के प्रेम में पड़े हो, इसलिए मैं मौजूद हो गया। अभी तक तो तुम मानसिक–लोक में थे, कल्पना जगत में अपनी धारणाओं के प्रेम में थे। जब आज तुम पहली बार यथार्थ के प्रेम में डूबे तो तुमने मुझे पा लिया।

जब हम इस जगत के प्रेम में पड़ते हैं तो हम पाते हैं कि परमात्मा मौजूद है, अभी और यहीं। भीतर भी, बाहर भी।

कौतो जोन जौपे माला तुलशी–तौला,
हाते झोले मालार झोला,
आर कौतोजोन होरि बोलि मारे ताली,
नेचे गेये हौय मातेला।।

कितने लोग तुलसी की माला जपते हैं, हाथ झोले में छुपाकर! और कितने लोग हरि–हरि गाते हुए ताली बजाते हैं, दीवाने होकर नाचते हैं लेकिन बाउल कहते हैं कि इससे भी परमात्मा नहीं मिलेगा। क्रियाकाण्ड से भक्ति का जन्म नहीं होता। माला जपने की दैहिक क्रिया से भक्ति पैदा नहीं होती। भक्ति तो मिटने की कला है। कैसे हम मिट जाएं, कैसे हम खो जाएं, इस निर्अहंकारिता की भूमि में भक्ति का पौधा पनपता है।

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर तू मरतबा चाहे
कि दाना खाक में मिलकर गुले गुल्जार होता है

हम किसी बहाने मिट जाएं, किसी निमित्त से हमारा अहंकार विलीन हो जाए तब हम पाएंगे कि ओंकार के संगीत से सारा अस्तित्व भरा है और वही परम–स्वर ईश्वर की अनुभूति है। अहंकार मिटे तो ओंकार प्रगटे।

आइए, सुनते हैं परमगुरु ओशो के अमृत वचन–

'भक्त को दुस्साहसी होना ही होगा। बूंद अपने को खोने चली है। छोटी सी बूंद इतने विराट सागर में। फिर न पता लगेगा, न ओर–छोर मिलेगा; फिर अपने से शायद कभी मिलना भी न हो; इतनी खोने की जिसकी हिम्मत है, वही भक्त हो सकता है। और जो भक्त हो सकता है, वही भगवान हो सकता है। भक्त होने का अर्थ है, बीज ने अपने को तोड़ने का निर्णय लिया। तुम जमीन में बीज को बोते हो, जब तक बीज टूटे नहीं, वृक्ष नहीं होता; जब तक बीज मिटे नहीं तब तक अंकुरण नहीं होता; बीज की मृत्यु ही वृक्ष का जन्म है। तुम्हारी मृत्यु ही भगवान का आविर्भाव है। भक्त जहां मरता है, वहीं भगवत्ता उपलब्ध होती है।

इसीलिए तो लोगों ने झूठी भक्ति की व्यवस्थाएं खोज रखी हैं, ताकि अपने को मिटने से बचा सकें। मंदिर जाते हैं, प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं, यज्ञ–हवन करते हैं, अपने को बचाए रखते हैं। आग में घी डालते हैं; अपने को नहीं डालते। आग में गेहूं डालते हैं, अपने को

नहीं डालते। वृक्षों से तोड़कर फूल परमात्मा के चरणों में चढ़ा आते हैं, अपने को नहीं चढ़ाते। और जिसने अपने को नहीं चढ़ाया, उसने पूजा जानी ही नहीं; वह बीज टूटा ही नहीं, अंकुरण से उसकी कोई मुलाकात ही न हुई।

बिना मिटे इस जगत में होने का कोई उपाय नहीं। छोटे तल पर मिटो तो बड़े तल पर प्रकट होते हो। जितने ज्यादा मिटो, उतने प्रकट होते हो। जब परिपूर्ण रूप से मिटते हो, तब भगवत्ता उपलब्ध होतीं है क्योंकि भगवत्ता पूर्णता है, उसके पार फिर कुछ और नहीं। लेकिन यह हो सकता है इसीलिए, क्योंकि यह हुआ ही हुआ है। इस उदघोषणा को जगह दो अपने हृदय में।'

कौतो जौन हौय उदाशी तीर्थोबाशी,
मौक्काते दियाछे नेला,
केउ बा मोशजिदे बोशे तार उद्देशे
शौदाय कौरे आल्ला आल्ला।।

कुछ लोग हैं जो तीर्थ जा रहे हैं, मक्का जा रहे हैं। कुछ लोग मस्जिद में बैठकर अल्लाह–अल्लाह सदा पुकार रहे हैं। तीर्थ जाने से भी परमात्मा नहीं मिलेगा। चले जाओ गिरिनार, चले जाओ काशी। कहीं भी जाने से परमात्मा नहीं मिलने वाला, अंतर तीरथ में आना होगा। संतों ने कहा है, तीर्थ अपने भीतर ही मौजूद है। जो ऊर्जा बाहर जा रही थी और खत्म होती जा रही थी, उसी ऊर्जा का जब भीतर लौटना होता है अपने निराकार–नूर में, अपने आत्मस्वरूप में, जब हम आंतरिक आलोक में स्नान करते हैं तो ये है असली तीर्थस्नान, ये है परमात्मा की अनुभूति।

अपनी शमा खुद जलाओ तो कोई बात बने।
अपनी महफिल खुद सजाओ तो कोई बात बने।
दूर के चांद पर, जाने से भला क्या होगा?
अपने ही दिल में समाओ तो कोई बात बने।
काबे में कोई खुदा अब तक मिला किसको?
रूह तक हज कर आओ तो कोई बात बने।
हजारों लोग यूं मुहब्बत तो किया करते हैं;
कामिल मुर्शिद को रिझाओ तो कोई बात बने।

खूब प्रेम करो लेकिन जब ये प्रेम गुरु के द्वार पर लग जाए, गुरु के चरणों में पड़ जाए और यह प्रेम जब श्रद्धा का रूप ले; तब भक्ति का जन्म होता है। गुरु के प्रति प्रीति से अंततः भक्ति का जन्म होता है। गुरु आकारधारी गोविंद है और जब हम इसके प्रेम में मिट जाते हैं तब हम पाते हैं कि हमारे सामने निराकार गोविंद मौजूद है। शिष्य कहता है–

तुम मुझे जीत लो, मैं हार जाऊं।
हार के प्रियतम, तुम्हारा प्यार पाऊं।
मेरे होने में है जुदाई, मिलन खुद के मिटने में है,

फूल खिलने की संभावना, बीज के गलने में है।

भक्ति की भूमि में, मैं मर ही जाऊं,

हार के प्रियतम, तुम्हारा प्यार पाऊं।

हम हारने के लिए तैयार हो जाएं, तो श्रद्धा घटे। यहां तो लोग प्रेम में भी जीतना चाहते हैं। जीतना प्रेम नहीं है, अपने आपको लुटा देना, हार जाना, ऐसी निर्अहंकारी अवस्था, ऐसी विनम्र अवस्था ही वास्तविक प्रेम है। यही प्रेम भक्ति में डुबो देता है। और जिस दिन कोई भक्ति में पूरा डूबता है तो वह पाता कि अल्ला–ताला उसके सामने मौजूद है, गोविंद से वह चारों ओर से घिरा हुआ है। एक इंच भी, एक कण भी उसके बिना है ही नहीं; तो वह गोविंद से दूर हो कैसे सकता है।

शौरूपे मानुष मिशे, शौरूप देशे

बोबाय कालाय नित्यो लीला

शौरूपेर भाब ना जेने चामोर किने

होच्छे कौतो गाजीर चेला।।

कबीर साहब कहते हैं–

गूंगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान।

पाऊं थैं पंगुल भया, सद्गुरु मारया बान।।

सद्गुरु के चरण में जब हम जाते हैं तो हमारी आत्मा का अस्तित्व जो कि सदा से गूंगा था, बोलने लगता है। और कुछ था जो हमारे भीतर सदा से बोलता था, वह चुप हो जाता है। ये जो हमारी खोपड़ी है वह सदा बोल रही है, सदा प्रश्न उठा रही है और सदा निरर्थक विचारों में मग्न है, वह मौन साध लेती है। जब हम गुरु के चरणों में जाते हैं तो चमत्कार हो जाता है। हमारा हृदय जो सदा से मौन था, ये खोपड़ी उसे बोलने ही नहीं देती थी, अब ये हृदय बोलने लगता है, अब हृदय मुखर हो उठता है और खोपड़ी की व्यर्थ बकवास शांत हो जाती है।

ऐसी चुप्पी में प्रभु का संगीत बरस जाता है जीवन में– एक ओंकार सतनाम्!

(प्रवचन – 8)

माटी के दीपक में चेतन की ज्योति

मानुष भौजोनेर कौथा जानाई तोरे।
जाहाते औमोर हौबि, जोम–जातोना जाबे दूरे।।
नरोनारी निर्बिकार होये,
दोहाके जानिबे दोहे
जीबोनेर अकोईतौबो गृहे
आत्तोतौत्तेर खौबोर कोरे।
जाहाते सृजौन बौर्धोन
जोगे ताहा कोरबि ग्रोहोन।
दीर्घो पौरोमायूर कारोन
जौनोम तार मौरोनेर द्वारे।
ए देहो के नित्यो भेबे
आत्तो बोस्तु खूँजे नेबे
लालोन शाह बोलछे तौबे
जानबि दूद्द मेयेरे धोरे।।

हे मानुष! भजन का उपाय मैं तुझे बताता हूँ जिससे कि तू अमर होगा और यम का फेर भी दूर रहेगा।

इस मानव देह में ही नरनारी निर्विकार में विद्यमान हैं। जीव इस अनूठे मानव देह में ही आत्मतत्व को जान सकते हैं।

उस आत्मतत्व को जानकर सृजन की शक्ति और बढ़ेगी। दीर्घायु बनाकर जनम–मरण के फेर से बचाता, वहीं आत्मधन हमें ज्ञान देता है। यह आत्म–रतन–धन देह के भीतर ही है। दुद्दू शाह कहते हैं मेरे गुरु लालन शाह बार–बार मुझे चेताते हैं कि इस परम–धन को अब तू जान ले।

मानुष भौजोनेर कौथा जानाई तोरे।
जाहाते औमोर हौबि, जोम–जातोना जाबे दूरे।।

कैसे भजन किया जाए कि इस आवागमन के फेरे से छुटकारा मिले? कि यमदूत पास न फटकें? संत रविदास जी कहते हैं–

साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी।
तुम सिउ जोरि, अवर संगि तोरी।।
जह जह जाउं, तहा तेरी सेवा।

तुम सो ठाकुरु अउरु न देवा।।
तुमरे भजन कटहि जम फांसा।
भगति हेत गावै रविदासा।।

अगर हमारी प्रीति सत्य से लग जाए, अगर हमारी प्रीति शाश्वत से लग जाए तो हम शाश्वत जीवन को जान लेते हैं, हम अमर हो जाते हैं। यम का पाश दूर हो जाता है, भजन से यमपाश कट जाते हैं और हम अमृत–तत्व को, सनातन जीवन को जान लेते हैं। उसे जान लेते हैं जो अजन्मा और अमर है।

मैंने सुनी है एक बोधकथा कि रेगिस्तान में एक आदमी के पास यमदूत आया। लेकिन आदमी उसे पहचान नहीं सका और उसने उसे पानी पिलाया।

'मैं मृत्युलोक से तुम्हारे प्राण लेने आया हूँ' यमदूत ने कहा 'लेकिन तुम अच्छे आदमी लगते हो इसलिए मैं तुम्हें पांच मिनट के लिए नियति की पुस्तक दे सकता हूँ। इतने समय में तुम जो कुछ बदलना चाहो, बदल सकते हो'।

यमदूत ने उसे नियति की किताब दी। पुस्तक के पन्ने पलटते हुए आदमी को उसमें अपने पड़ोसियों के जीवन की झलकियाँ दिखीं। उनका खुशहाल जीवन देखकर वह ईर्ष्या और क्रोध से भर गया।

'ये लोग इतने अच्छे जीवन के हक़दार नहीं हैं' उसने कहा, और कलम लेकर उनके भावी जीवन में भरपूर बिगाड़ कर दिया।

अंत में वह अपने जीवन के पन्नों तक भी पहुंचा। उसे अपनी मौत अगले ही पल आती दिखी। इससे पहले कि वह अपने जीवन में कोई फेरबदल कर पाता, मौत ने उसे अपने आगोश में ले लिया।

अपने जीवन के पन्नों तक पहुँचते–पहुँचते.... पांच मिनट पूरे हो चुके थे।

यमदूत उससे बोला कि अब तुम्हारे पांच मिनट पूरे हो गए हैं, अब आप इस किताब को मुझे सौंप दीजिए। पांच मिनट के अलावा अब वक्त नहीं है, तुम्हारा समय समाप्त हुआ।

वह आदमी अपने जीवन पर लौट ही नहीं पाया कि अपना भाग्य बदल सके। हम तो सदा दूसरों के जीवन को देखने के आदी हैं। दूसरे के भाग्य से ईर्ष्या करते रहते हैं। और ऐसे ही यह जिंदगी समाप्त हो जाती है। यूं ही अथाह ऊर्जा का सागर, यह प्यारा जीवन खत्म हो जाता है और हम थक–हारकर मृत्यु के मुंह में चले जाते हैं, रोते–बिलखते हुए। अगर हमारी दृष्टि, हमारी जीवन–ऊर्जा हम पर लौट आए, अगर यही ध्यान हम स्वयं पर देने लगें तो भक्ति का जन्म हो जाएगा। और इस जिंदगी–मौत के पार कौन सा महाजीवन है उसकी भी पहचान हो जाएगी। भक्त की मृत्यु नहीं होती है, भक्त अमर हो जाता है। प्रेम की मृत्यु नहीं

होती है, वह तो शाश्वत तत्व है। माटी की देह रूपी दीपक तो मिटता है किंतु अमृत–चैतन्य की ज्योति सनातन है।

नरोनारी निर्बिकार होये,
दोहाके जानिबे दोहे
जींबोनेर अकोईतौबो गृहे
आत्तोतौत्तेर खौबोर कोरे।

परमात्मा को अर्धनारीश्वर कहा गया है। हर व्यक्ति में पचास प्रतिशत स्त्री है और पचास प्रतिशत पुरुष है और वह जो आत्मतत्व है वह इस द्वन्द्व के पार है। और जब हम द्वैत के पार जाकर उस आत्मतत्व में रमते हैं तो वहां हमें परमात्मा की अनुभूति होती है।

आइए, सुनते हैं, परमगुरु ओशो क्या कहते हैं–

'अगर वह स्त्री है, तो पुरुष–तत्व कहां से आएगा, कहां से शुरू होगा, कहां से पैदा होगा? वह दोनों ही है। एकसाथ दोनों है। इसलिए दोनों को पैदा कर पाता है। और हम जब तक स्त्री–पुरुष हैं, तब तक हम परमात्मा के टूटे हुए दो हिस्से हैं। इसलिए स्त्री–पुरुष का आपसी आकर्षण एक होने का आकर्षण है। स्त्री–पुरुष का आकर्षण पूरा होने का आकर्षण है। वह आधे–आधे हैं। अर्द्धनारीश्वर की हमारी कल्पना और हमारी प्रतिमा बड़ी अनूठी है। दुनिया ने बहुत प्रतिमायें बनाई हैं, लेकिन अर्द्धनारीश्वर में जो बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य है, उसका कोई मुकाबला नहीं है। अर्द्धनारीश्वर में हम इतना ही कह रहे हैं कि परमात्मा दोनों हैं, एक–साथ, और पूरा है। एक पहलू उसका स्त्रैण है, एक पहलू उसका पुरुष है। या ऐसा कहें कि वह दोनों का सम्मिलन है, दोनों का मध्य है; दोनों का 'बियांड' है, दोनों का पार है।

जीसस ने एक बहुत अच्छा शब्द उपयोग किया है, 'यूनचेज़ ऑफ गॉड'। जीसस ने कहा है कि जिसे प्रभु को पाना है, उसे प्रभु के लिए नपुंसक हो जाना पड़ेगा। बड़ी अजीब बात कही है। पर कही बिलकुल ठीक है। जिसे प्रभु को पाना है, उसे प्रभु जैसा होना ही पड़ेगा। इसलिए बुद्ध अपनी पूरी गरिमा में, या कृष्ण अपनी पूरी गरिमा में न स्त्री हैं, न पुरुष हैं। अपनी पूरी गरिमा में वे दोनों हैं। अपनी पूरी गरिमा में वे मिश्रित हैं। अपनी पूरी गरिमा में एक अर्थ में वे 'ट्रांसेंडेंटल सेक्स' हैं, वे पार हो गए दोनों द्वंद्वों के और दोनों के बाहर हो गए। लेकिन हमारे बीच द्वंद्व है। मात्राओं का द्वंद्व है।

परमात्मा दोनों हैं युगपत, साइमल्टेनीयसली। और जिसे हम नपुंसक कहें, वह दोनों नहीं है। नपुंसक सिर्फ अभाव है, 'एब्सेंस' है। और परमात्मा भाव है, 'प्रेजेंस' है। परमात्मा में स्त्री और पुरुष दोनों हैं। इसलिए अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमा है, उसमें आधी स्त्री है, आधा पुरुष है। हम परमात्मा को नपुंसक जैसा भी बना सकते थे, जिसमें न स्त्री होती, न पुरुष

होता; लेकिन वह अभाव होता। परमात्मा दोनों का भाव है, दोनों की 'पाज़िटिविटी' है। और जिसे हम नपुंसक कहते हैं, वह बेचारा दोनों का अभाव, 'निगेटिविटी' है। उसके पास कोई व्यक्तित्व नहीं है, इसलिए उसकी पीड़ा का कोई अंत नहीं है। इसलिए जब जीसस कहते हैं, 'यूनचेज़ ऑफ गॉड, तब वह बिलकुल कह रहे हैं कि परमात्मा में, परमात्मा के लिए वे न स्त्री रह जाएं, न पुरुष हो जाएं; और तब वे दोनों रह जाएंगे, दोनों हो जाएंगे।'

बाउल कहते हैं परमात्मा नरनारी है। ब्रह्म पुरुष भी है और स्त्री भी है। वह दोनों का योग है। यह जगत प्रगट ब्रह्म है, जगत द्वैत से बना है; इलेक्ट्रॉन और प्रोट्रान। विद्युत में धन विद्युत, ऋण विद्युत! अब विज्ञान में खोज हो गई है, पार्टिकल्स और एंटीपार्टिकल्स की। इस ब्रह्माण्ड में देखें तो व्हाइट होल्स और ब्लैक होल्स हैं। प्रगट ब्रह्म सदा द्वैत से निर्मित है। लेकिन ऋण और धन जब मिलते हैं तो शून्य पर पहुंच जाते हैं। और इसी शून्य से सारे जगत की उत्पत्ति होती है। बुद्ध इसी शून्य की बात करते हैं जिस शून्य से सारा जगत पैदा होता है।

जाहाते सृजौन बौर्धोन
जोगे ताहा कोरबि ग्रोहोन।
दीर्घो पौरोमायूर कारोन
जौनोम तार मौरोनेर द्वारे।

परमात्मा बहुत सक्रिय है, इस परमात्मा से ही सारा सृजन है। चाहे बीज में अंकुर फूटता हो, चाहे आकाश में एक तारा उगता हो, चाहे एक फूल खिलता हो, यह सब परमात्मा का ही सृजन है। चाहे एक शिशु पैदा होता हो, अथवा नई कोंपल फूटती हो...ये परमात्मा का ही सृजन है। परमात्मा महासक्रिय है। शून्य से सारे विराट खेल का आयोजन होता है। इस शून्य में बड़ी ऊर्जा है लेकिन हम दीन बने हुए हैं, भिखारी बने हुए हैं क्योंकि हम कुछ होना चाहते हैं। हम पूर्ण होना चाहते हैं इसलिए हम दीन-दरिद्र होते हैं। जब हम नाकुछ हो जाते हैं, हम मिट जाते हैं तो हम पाते हैं कि हम सर्वशक्तिमान हो गए, सारी ऊर्जा का स्रोत हो गए। हम ब्रह्म हो गए, हम भगवान हो गए।

दीर्घो पौरोमायूर कारोन
जौनोम तार मौरोनेर द्वारे।

ये जो जन्म है ये मरने के द्वार से ही मिलता है। जिसके लिए गोरख कहते हैं-

मरोहिं जोगी मरो, मरो मरण है मीठा,
तिस मरणी मरो, जिस मरणी मरे गोरखदीठा।

अगर हम जीते-जीं मरना सीख जाएं तो काम बन जाए। ये जो मैं-पन का भाव है यह

खत्म हो जाए, मैं–भाव समाप्त हो जाए! अहंकार शून्यता घट जाए, तो वह प्रमाण है कि हम जीते–जी मरना सीख गए। हम सारे शरीर से ऊर्जा को सिकोड़कर एक केन्द्र पर ले आएं और उस केन्द्र पर सारी चेतना इकट्ठी करके अनुभव करें कि सारा शरीर मरा हुआ–सा है और तब भी हम जीवंत हैं। ये शरीर नहीं रह गया, तब भी हम हैं। इसे कहते हैं जीवित मरिए भव जल तरिए। सारे शरीर से ऊर्जा को समेटा और एक बिन्दु पर ले आए और उस बिन्दु से मरे हुए शरीर को देखा और फिर भी अपने अस्तित्व को अनुभव किया जो शरीर नहीं है। शरीर के पार हमारी आत्म–सत्ता है।

प्रेम मरने की कला है, प्रेम हमारे अहं–भाव को मिटा देता है और इस मिटने में हम पाते हैं कि हमें एक नया शाश्वत जीवन मिला। मिरदाद कहते हैं– लोग मरने के लिए जीते हैं और साधक जीने के लिए मरता है। असली जीवन जानने के लिए मरने की अनुभूति से गुजरना पड़ता है।

परमगुरु ओशो की एक हिन्दी किताब का नाम है 'मैं मृत्यु सिखाता हूं'। एक अंग्रेजी किताब का नाम है 'दि आर्ट ऑफ डाईंग'।

ए देहो के नित्यो भेबे
आत्तो बोस्तु खूँजे नेबे
लालोन शाह बोलछे तौबे
जानबि दूद्द मेयेरे धोरे।।

कैसे सत्य को जानोगे, कैसे गोविंद को जानोगे, असत्य के प्रति जागरूक होओगे तो सत्य का ज्ञान हो जाएगा। कबीर साहब कहते हैं–

माया महाठगनी हम जानी। हमारे सोने की कला का नाम माया है, माया हमारी मूर्च्छित दशा है। नींद की हालत में इस जगत में जो द्वैत है वह दिखाई देता है। जो नहीं है वह दिखाई देता है। और जो है, वह नहीं दिखाई देता है। यह है माया। अगर हम इस माया के प्रति जागरूक हो जाएं, सपना टूट जाए, तो हम पाएंगे कि इसके पार जो है वह अमृत चैतन्य है।

सब गोविंद है, सब गोविंद है, गोविंद बिन नहीं कोई।

धन्यवाद।

(प्रवचन – 9)

अज्ञात का आमंत्रण

प्यारे मित्रो, साधक–साधिकाओ, नमस्कार।

आओ, आज हम प्रसिद्ध बाउल संत लालन साहब की अमृत वाणी सुनते हैं–

आए के जाबी ओ पारे
दौयाल चांद मोर दिच्छे खेया
ओपारे सागोरे।।
जे दिबे शेई नामेर दोहाई
तारे दौया कोरबेन गोसाई
एमोन दौयाल आर केहो नाई
भौबेर माझारे।।
पार कौरे जौगोत बेड़ी
नौयना शे पारेर कोड़ी
शेरे शूरे मोनेर देड़ी
भार दे ना तारे।।
दिए ओई श्री चॉरोने भार
कौतो औधोम पापी होलो जे पार
शिराज साईं कॉय, लालोन पतोमार
बिगार जाय ना रे।।

आओ, कौन जाएगा इस संसार समुद्र के पार, क्योंकि दयालु प्रभु स्वयं नाव खेवैया हैं। जो उस नाम की दुहाई देता है उस पर गुरु कृपा करते हैं। ऐसे दयालु प्रभु तुम और कहां पाओगे?

गुरु ही हैं जो जगत की बेड़ियों को काटते हैं और भवसागर से पार लगाने की कोई कीमत भी नहीं लेते। अपने मन के भ्रम को दूर करके गुरु चरणों में ही निर्भर हो जाओ, तभी तुम्हारी नैया उस पार जा पाएगी। गुरु चरणों में ही सार है, ऐसा जानकर कितने ही अधम पापी पार हो गए। लालन कहते हैं कि मेरे गुरु सिराज साईं कहते हैं कि मन के भ्रम को दूरकर उस पार चला चल।

गुरु अज्ञात का आमंत्रण है, गुरु विराट की पुकार है। विराट हमें पुकार रहा है गुरु के माध्यम से। आत्मा से मिलने के लिए परमात्मा भी प्यासा है। गुरु मिलाने वाला सेतु है, ब्रिज है।

जितनी प्यासी प्यास स्वयं है
उतना प्यासा खुद है पानी।
हर प्यासे की एक डगर है

हर पानी की यही कहानी।

नदी ही सागर से मिलना नहीं चाहती, सागर भी नदी से मिलने के लिए आतुर है। जितने कदम हम परमात्मा की ओर उठाते हैं परमात्मा भी उतने कदम हमारी ओर उठाता है। और याद रखना, मध्य में मिलन होता है। भक्त का और परमात्मा का मध्य बिंदु पर मिलन होता है। भक्त प्रतीक्षा करता है। वह प्रभु पर नाराज नहीं होता कि इतनी साधना कर ली मैंने, तुम मिलते क्यों नहीं? वह कहता है कि अवश्य मेरी ही साधना में, प्रार्थना में कुछ कमी होगी। विलम्ब यदि हो रहा है तो उसकी वजह मेरी ही भूल-चूक होगी।

वो आ तो जाएं मगर इंतजार ही कम है,
वो बेवफा तो नहीं मेरा प्यार ही कम है।
मैं कैसे मानूं उस पर कोई असर ही न हो,
ये दिल तड़पता रहे और उसे खबर भी न हो।
ये दिल खुदा की कसम बेकरार ही कम है।

गुरु हमारी बेकरारी को बढ़ाता है, गुरु को देखकर हमारे भीतर एक प्यास जगती है, गुरु हमारे भीतर प्यास पैदा जगाता है। विरह अग्नि धधक उठती है, वही मिलन की भूमिका बनती है।

जमाना कहता है कि वो मेरा साथ छोड़ गया,
वो मुझसे रूठ गया मेरे दिल को तोड़ गया।
मैं क्या करूं कि मुझे ऐतबार ही कम है।

हमें ऐतबार कम है, हमें भरोसा ही नहीं होता कि हमसे मिलने के लिए परमात्मा भी तड़प रहा है। ये भरोसा, ये विश्वास गुरु ही दिलाता है। जैसे कि लहलहाते पेड़ को देख के बीज को श्रद्धा आ जाए कि मैं भी वृक्ष बन सकता हूं ऐसे ही भक्त गुरु को देख के भरोसा पाता है। गुरु को देखकर हमें अहसास होता है कि गुरु भी हमारे जैसे ही उठता-बैठता, चलता-फिरता है, संसार में जीता है और फिर भी हमसे अलग है, ऐसी कौन सी बात है गुरु में? वह बात अपने भीतर भी पैदा की जा सकती है, ऐसा भरोसा जन्मता है। सच पूछो तो परमात्मा ही गुरु-रूप लेकर हमें पुकारता है।

हर युग में नाविक आते हैं, कुछ नूतन घाट बनाते हैं,
तैयार खड़े जो चलने को, उस पार उन्हें ले जाते हैं।

हर युग में परमात्मा गुरु भेजकर हमें पुकारता है। गुरु-रूप में परमात्मा स्वयं आता है हमें उस पार ले जाने के लिए। लेकिन शायद उस पार हम जाना ही नहीं चाहते। अथवा, हम जैसे हैं, वैसे ही उस पार जाना चाहते हैं, जो कि नामुमकिन है। जैसे इस संसार में गुरु जीता है- जल में कमलवत, हम वैसा जीना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि पत्थर हीरा बन

जाए। ऐसे कैसे संभव है?

श्रीलंका में एक भिक्षु हुआ और उसने अस्सी साल तक प्रवचन दिया। लोगों को ध्यान कराया और तरह–तरह के उपदेश दिए। एक दिन सब लोग उसके चारों ओर खड़े हुए थे तब उस भिक्षु ने कहा कि मैं आवाज लगा रहा हूं कि कितने लोग निर्वाण चलने के लिए अभी तुरंत तैयार हैं? शीघ्र ही मैं निर्वाण के द्वार खोलूंगा। सब एक–दूसरे का मुंह देखने लगे, कोई भी उस पल तैयार नहीं था। सब एक–दूसरे को कहने लगे कि तुम चले जाओ। बौद्ध भिक्षु खूब हंसा। हंसते–हंसते उसने अपनी देह त्याग दी।

ऐसी है हमारी मोक्ष की कामना– कुनकुनी, नहीं के बराबर, बातचीत के लिए, बहस के लिए... बस! इसलिए गुरु आते हैं आवाज देते हैं, पुकारते हैं और चले जाते हैं किंतु हम इधर–उधर देखते रह जाते हैं।

गुरु चांद के सदृश्य है और शिष्य आषाढ़ की अंधेरी रात है। जैसे चांद से परावर्तित होकर सूरज की रोशनी आती है ऐसे ही गुरु के माध्यम से परमात्मा का आलोक हम तक पहुंचता है। जैसे हम सीधे सूरज को नहीं देख सकते ऐसे ही सीधे परमात्मा से हमारा साक्षात्कार नहीं हो सकता। चांद सूरज की रोशनी को शीतल कर देता है वैसे ही गुरु की शीतलता हमें सक्षम कर देती है प्रभु–मिलन के लिए। बाउल संत लालन साहब कहते हैं–

दयाल चांद दीछे खेया ओ पारे सा।

गुरु कैसे भवसागर के पार ले जाता है? सर्वप्रथम तो गुरु बताता है कि भवसागर है कहां? भवसागर हमारे ही भीतर है। बाहर कोई बंधन नहीं है, बाहर के सागर को नहीं पार करना है। संसार अपने भीतर हमने ही निर्मित किया है, ये सारे कामनाओं के बंधन हमने बनाए हैं। बाहर जो घटनाएं घटती हैं उनकी प्रतिध्वनि हमारे भीतर होती है, उनकी प्रतिछवि मन के पर्दे पर उतरती है। उन प्रतिक्रियाओं, उन छायाओं के पार जाना है। उनसे पार जाने की कला गुरु सिखाता है। जो उस नाम की दुहाई देता है उस पर गुरु दया करते हैं। अर्थात् जो ओंकार श्रवण में डूबता है, उस पर अनुकंपा बरसती है।

जे दींवे से नामे दुहाई ताते दया करहिं गोसाईं।

आत्मपूज़ा उपनिषद में केवल सत्रह सूत्ररूपी संक्षिप्त पंक्तियां हैं। आत्मपूज़ा का पहला सूत्र है वह ओम है, दूसरा सूत्र है उसका स्मरण ध्यान है। गुरु ओंकार से परिचय कराता है। और कैसे उसके स्मरण में जीना है, सुमिरन में जीना है इसकी कला बताता है। गुरु जगत की बेड़ियों को काट देते हैं और कीमत कुछ भी नहीं लेते। कामनाओं की बेड़ियां हमने खुद ही बनाई हैं। और दोष देते हैं कि इन बेड़ियों ने हमको जकड़ रखा है।

एक बार एक सूफी फकीर अपने शिष्यों के साथ किसी रास्ते से गुजर रहा था। उसने अपने शिष्यों से पूछा– 'देखो, वह व्यक्ति गाय लेकर जा रहा है। बताओ कि गाय ने इसे बांध

रखा है कि ये आदमी गाय को बांधे हुए है?' शिष्य हंसने लगे कि गाय आदमी को कैसे बांध सकती है! रस्सी व्यक्ति के हाथ में है और निश्चितरूप से व्यक्ति ने गाय को बांध रखा है। फकीर ने कहा कि मैं तुम्हें अभी बताता हूं कि किसने किसको बांध रखा है। फकीर ने जाकर उस व्यक्ति के हाथ से रस्सी छुड़ा दी और छूटते ही गाय ने दौड़ लगा दी। गाय का मालिक गाय के पीछे–पीछे भागने लगा। फकीर ने कहा कि अब देखो कौन किससे बंधा था! एक अदृश्य लोभ–मोह की रस्सी आदमी के गले में थी, और गाय के हाथ में। असली मालिक आदमी नहीं, गाय है। कामनाओं की बेड़ियां हमने बनाई हैं और हम ही बंधे हुए हैं। यह ख्याल हमें गुरु ही दिलाता है, यह प्रज्ञा गुरु ही जगाता है कि कैसे हम काम–क्रोधादि वृत्तियों के पार चलें, कैसे हम षटरिपुओं से मुक्त हों।

संत सहजो बाई कहती हैं–

हरि ने कुटुंब जाल में घेरी, गुरु ने काटी ममता बेड़ी।

हरि ने हमें यहां बंधनों के बीच में भेजकर छोड़ दिया अब इन बंधनों के पार जाने की विधि गुरु ही तो बताता है। भवसागर से हमें पार ले जाने के लिए बुद्धपुरुष धरती पर आते हैं।

कश्ती का जिम्मेवार नाखुदा ही नहीं,
कश्ती में बैठने का सलीका भी चाहिए।

ये सलीका है निर्अहंकारिता, ये सलीका है विनम्रता। कैसे हम विनीत हो जाएं, कैसे हम अभिमान के पार चले जाएं। तभी गुरु–कृपा के हम पात्र बन पाते हैं। जब हम अपने हृदय को खोलकर गुरु के पास जाते हैं तभी उनकी युक्ति हम पर काम करती है और मुक्ति मिलती है। मेरे सतगुरु पकड़ी बाँह, नहीं तो मैं बहि जाता।

करम काटि कोइला किया, ब्रह्म अगिनि परिजार।
लोभ मोह भ्रम जारिया, सतगुरु बड़े दयार।।

लोभ–मोहादि सब कुछ जला देते हैं, इतने दयालु हैं मेरे सदगुरु।

कागा से हंसा किया, जाति बरन कुल खोय।
दया दृष्टि से सहज सब, पातक डारे धोय।।

कागा से हमें हंस कर दिया और हमारे सारे पाप धो डाले। गुरु की ऐसी जादुई दृष्टि पड़ी कि हमारे सारे पाप धुल गए।

सतगुरु सबद सुनाइया,
भनक पड़ी मेरे कान।।

सदगुरु ने ऐसा शब्द सुनाया, ओम् में डुबाया कि जिसके सुनते ही जीवन बदल गया।

माया ममता तजि दई, विषया नाहिं समाय।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, हद तजि बेहद जाय।।

सारी मोह–ममता तज गई और अब हम विषयों के वशीभूत नहीं होते, सब विषयों के पार उस असीम के दर्शन हो गए। उस असीम से मुलाकात हो गई। प्रभु को सीधे प्राप्त करने की कोशिश में न प्रभु मिलते हैं न गुरु। किंतु गुरु को पा लो तो गुरु के संग–संग प्रभु भी मिल जाते हैं। संत सहजो बाई कहती हैं कि भगवान को छोड़ने तैयार हूं मगर गुरु का हाथ न छोड़ूंगी। राम तजूं पर गुरु न बिसारूं। इस वचन पर ओशो ने बड़ा प्यारा प्रवचन दिया है। आओ, सुनते हैं गुरु–महिमा के विषय में परमगुरु की अमृत वाणी–

'परमात्मा बहुत दूर है, गुरु तो बहुत पास है। परमात्मा तो हो सकता है सिर्फ एक प्रत्यय, एक धारणा, एक शब्द हो... किसने देखा, किसने जाना है! लेकिन गुरु बहुत यथार्थ है, उसके चरण हाथ से पकड़े जा सकते हैं। परमात्मा के चरण कहां पकड़ोगे। स्त्री के लिए गुरु ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है परमात्मा से भी। सहजो का वचन बड़े नास्तिक का मालूम पड़ता है– राम तजूं पर गुरु न बिसारूं। परमात्मा को छोड़ सकती हूं इसमें मुझे कुछ अड़चन नहीं है राम त्यागने में, लेकिन गुरु को छोड़ना असंभव है। पुरुष को यह कहने में थोड़ी सी हिंचक होगी। वह कहेगा कि गुरु को तो छोड़ना ही है, परमात्मा को ही पाना है, एक दिन तो गुरु को छोड़ना ही पड़ेगा और परमात्मा से मिलन करना होगा। स्त्री कहेगी कि अगर परमात्मा को मिलना है तो वह गुरु में ही आ जाए, स्त्री कहती है कि वह सगुण हो तो ही भरोसे के योग्य है, उसमें आकार हो तभी हमें भरोसा आएगा। क्योंकि स्त्री प्रेम करना चाहती है, ध्यान नहीं। जिसको ध्यान करना हो तो वह निराकार हो तो भी चलेगा। अगर उसका आकार होगा तो ध्यान में बाधा आएगी। लेकिन जिसे प्रेम करना हो उसका आकार न हो तो कैसे प्रेम करोगे? गले कैसे लगाओगे उसको?'

भ्रांतिविनाशक सत्यप्रकाशक सच्चिदानंद स्वरूप
निराकार साकार हुआ है, ले सद्गुरु का रूप।

वह अरूप व निराकार प्रभु, गुरु के रूप में आकार लेकर अवतरित होता है। और हमें सारे भ्रमों के परे ले जाता है। सारी भ्रांतियों को दूर कर देता है। भ्रम एक ही है और वह है कि हम कर्ता हैं। भ्रांतिविनाशक गुरु हमें कर्ता से साक्षी के द्वार पर ले आता है। सत्यप्रकाशक गुरु अज्ञात का आमंत्रण है। प्रभु की पुकार है। सच्चिदानंद में प्रवेश–द्वार है। ओम् श्री गुरुवै नमः। जय ओशो।

(प्रवचन - 10)

भीतर डूबने से प्रभु मिलन

दिल–दोरियार माझे उठछे आजोब कारखाना।
डूबले कौतो रौत्नो पाबि, भाशले पौरे पाबि ना।।
माझे–माझे जाहाज गैछे, दाँड़ि माझि छौयजोन आछे
नौयजौना तार गुन टानिछे हाल धोरिछे ऐकजौना।।

धारे धारे बागान आछे, नानाजाति फूल फूटेछे,
शोउरौभे जौगोत मेतेछे आमार नाशा मातलो ना।।
दोरियाते फूल फूटेछे ताते ब्रोम्हा–बिष्णु–शिब रोयेछे,
तिनके जे ऐक कोरे छे तार किशेर भाबोना।।

ओनुरागे जे बोशे आछे, दिलेर खौबोर शेई रेखेछे,
मोनके शे ठिक कोरे छे, कोरछे होरींर शाधोना।।
गोंसाई गिरिलाल भौने चाकूरे जाबि कोन शाधोने
धौर गा गुरुर श्रीचौरोने नोइले जावा हौबे ना।।

दिल रूपी दरिया के बीच एक अजीब कारखाना है। जो उस दरिया में डूबेगा वही रतन रूपी मोती पायेगा। किनारे रहकर रतन नहीं पाया जा सकता।

इस जहाज को छः मांझी और नौ गुझा खींच रहे हैं, और एक निरंजन स्वरूप इसे सम्भाले हुए है। इस जीवन रूपी बगिया में अनेक फूल खिले हैं जिसकी सुरभि से सब मतवाले हो जाते हैं लेकिन उस सुगंध से मेरा मन अधीर नहीं होता।

इस दरिया में जो फूल खिला है उसमें त्रिगुण समाया है। तीनों गुण एक हो जाने पर परमानंद का बोध होता है। प्रेम–रस–भक्ति से ही हरि को बांध सकते हैं।

गोसाई गिरिलाल कहते हैं कि मैं गोविंद का चाकर हूँ। साधना के बिना गुरु चरण नहीं पा सकता। गुरु ही वह मांझी हैं जो दरिया के पार ले जावेंगे।

दिल–दोरियार माझे उठछे आजोब कारखाना।
डूबले कौतो रौत्नो पाबि, भाशले पौरे पाबि ना।।

कबीर दास जी कहते हैं–

जिन खोजा तिन पाइयांश गहरे पानी पैठ।
मैं बउरी डूबन डरी, रहीं किनारे बैठ।।

सतह पर किनारे बैठने से कुछ भी नहीं मिलता। जीवन की परिधि में जीने से परमात्मा नहीं मिलता, मोती नहीं मिलते। गहराई में जाना होगा, केन्द्र में उतरना होगा।

एक बार की बात है, एक व्यक्ति नदी में तैरते-तैरते डूबने लगा। पास में चंदूलाल बैठा हुआ देख रहा है। वह डूबता हुआ व्यक्ति चिल्लाता हैः हेल्प-हेल्प। मदद करो, मदद करो। चंदूलाल देखकर आंखें बंद कर लेता है। उस व्यक्ति को तो बहुत गुस्सा आया। वह डुबकी खाकर जब फिर से ऊपर आया तो उसने बहुत चीखकर कहा कि तुम तो कसाई हो, कितने निर्दयी हो! मैं डूब रहा हूं तो मेरी सहायता करनी चाहिए। चंदूलाल बोला- हेल्प कैसे करूं, डूबने में कैसे मदद पहुंचाऊं! जनाब, डूबने की कोई टेकनीक नहीं होती।

डूबना कैसे होगा? तैरना छोड़ दो तो डूबना हो जाएगा। अपने भीतर कैसे डूबें हम? परिधि पर क्रियाकलाप चल रहे हैं और सारी लहरें हैं। परिधि से केन्द्र पर आ जाओ जहां पर कोई गतिविधि नहीं है और यहां पहुंचने को ही डूबना कहते हैं। इस तरह से जो भी अपने भीतर डूबा है वह रामरतन धन को पाया है।

हम हमेशा तीन प्रकार से कामों में संलग्न रहते हैं। कोई शारीरिक तल पर काम कर रहा है, कोई तपस्या कर रहा है, कोई माला जप रहा है, कोई तीर्थ जा रहा हैं। धर्म के नाम पर भी तरह-तरह के उपाय हम कर रहे हैं दैहिक तल पर। ऐसे ही मानसिक तल पर, विचारों के तल पर हम सदा ही उलझे हुए होते हैं- सिद्धांतों में, दर्शन शास्त्रों में, वाद-विवादों में। और हार्दिक तल पर भी कहीं हम राग-द्वेष में पड़े हैं, कहीं मोह में व्यस्त हैं। सुखद और दुखद भावनाओं में डोलते रहते हैं। इन तीनों के पार अपने अंतर्तम में, जहां पर कोई क्रिया नहीं चल रही है, वहां जाकर अपने होने में, बीईंग में स्थित हो जाओ तो इसी को कहते हैं डूबना। ज्ञानी इसे संसार के पार जाना कहते हैं। पार जाना और डूबना एक ही बात है। नो डूईंग, नो थिंकिंग, नो फीलिंग, जस्ट प्योर बीईंग। न कुछ करना, न सोचना, न भावना, केवल होना।

माझे-माझे जाहाज गैछे, दाँड़ि माझि छौयजोन आछे
नौयजौना तार गुन टानिछे हाल धोरिछे ऐकजौना।।

इस शरीर रूप जहाज के छः माझी हैं। ये शरीर एक जहाज है जो कि यात्रा करता है परमात्मा के सागर की। ये जो पांच बाहरी इंद्रियां हैं और भीतर एक मन, ये छः माझी हैं। इन्द्रियां सूचनाओं को हमारे भीतर लाती हैं। आंख प्रकाश लाती है, कान आवाज लाते हैं, जिह्वा स्वाद लाती है। इस तरह से सारी इंद्रियां हमारे अंदर जानकारियां प्रेषित करती हैं। जानकारियों का भंडार, स्मृति-आलय है हमारा मन। इनको माझी

कहा गया है। कबीर ने कहा है–

अक्षय पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार।

तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।।

गिनती का जो सबसे बड़ा अंक है वह नौ है, नौ अनंत का प्रतीक है। उस एक से अनंत हो जाता है। एक परमात्मा का यह जो विस्तार है इसी का नाम संसार है। ज्ञानी वापिस जब लौटता है तो संसार फिर एक पर आ जाता है। स्वयं में डूबकर, मूल में समाकर, उसी एक साक्षी में रमना है।

ओशो ने अपने आश्रम के लिए जो प्रतीक चुना था उसकी आकृति बताती थी कि कैसे एक से तीन और फिर तीन से नौ और नौ से अनंत हो जाता है। एक से तीन संसार शुरू हुआ, तीन से नौ में संसार भरपूर हो गया, फिर अनगिनत पत्तियां, पूरा बाजार आ गया। यह है अवतरण। जब बाजार फिर वापिस लौटता है, प्रतिकमण करता है, तो फैलाव से नौ में, क्रमशः तीन में और अंततः एक में समा जाता है। फिर एक साक्षी मात्र रह जाता है। अक्षय पुरुष इक पेड़ हैं 'निरंजन वाकी डार, तिरदेवा शाखा भहे पात भया संसार।' तीन का अर्थ है दृश्य–दर्शन–द्रष्टा। ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेय। जहां सारी माया खो गई, सारे दृश्य विलीन हो गए, केवल बोध बचा, ज्ञानमात्र बचा, वहां वापस अपने में समा गए। धर्मयात्रा पूरी हुई।

धारे धारे बागान आछे, नानाजाति फूल फूटेछे,

शोउरौभे जौगोत मेतेछे आमार नाशा मातलो ना।।

संसार में तरह–तरह के फूल हैं, भांति–भांति की खुशबू हैं। उनसे सारा संसार मतवाला होता है लेकिन मुझे उस सुरभि का नशा नहीं चढ़ता, गोसाईं गिरि लाल कहते हैं।

राजा जनक के जीवन की घटना है कि उनके दरबार में एक साधु आया। जनक ने उस साधु का बहुत सत्कार किया। स्वादिष्ट भोजन, सुंदर वस्त्र, और उसे रात में बहुत सुखद बिस्तर दिया। रास–रंग में डूबे जनक को देखकर साधु के मन में लगा कि यह किस तरीके का सिद्ध है, किस प्रकार का यह ब्रह्मज्ञानी है! साधु को भीतर ही भीतर हंसी आ रही थी। रात को जब साधु सोने के लिए बिस्तर पर गया तो देखता है कि उसके बिस्तर के ठीक ऊपर एक पतले धागे से एक तलवार लटक रही है। उसको तो रात भर नींद नहीं आई।

सुबह जब हुई तो जनक उसे लेने के लिए आए और बोले कि कहिए प्रभु, कैसी नींद आई? साधु तो नाराज हो गया, बोला कि मैं कैसे सो सकता था, इतना सुंदर तुमने बिस्तर दिया लेकिन ऊपर जो लटकती हुई तलवार थी उसको देखकर क्या किसी को नींद

आएगी... अब गिरी कि तब गिरी।

जनक ने कहा कि आपका मन मेरे प्रति निंदा से भरा हुआ था न! तो अब आप सोच लीजिए कि इस रास–रंग में मुझे कैसे नींद आती होगी, मैं कैसे इस राजमहल में मतवाला हो सकता हूं, बेहोश हो सकता हूं? मुझे निरंतर उस एक तलवार की याद बनी रहती है... कि मौत कभी भी आ सकती है।

ऐसे ही गोसाई गिरि लाल कह रहे हैं कि मुझे इस संसार की सुगंधों से नशा नहीं आता। इस दरिया में जो फूल खिला है उसमें त्रिगुण समाया हुआ हैं तीनों गुण के एक हो जाने पर परमानंद का बोध होता है।

राजस तामस सातिग तीन्य, ये सब तेरी माया।

चौथे पद को जे जन चीन्हैं तिनहिं परमपद पाया।।

आइए, सुनते हैं इस बारे में परमगुरु ओशो क्या कहते हैं–

'अनिवार्य तत्व हैं तीन, उससे कम नहीं हो सकते। तीन के बिना सृष्टि खो जाएगी, इसलिए वे हैं। लेकिन तमस में आप गिरें, इसलिए नहीं। आप तमस के द्वारा रजस को साधते रहें। जब तमस बढ़ जाए, तो रजस की तरफ झुक जाएं। जब रजस बढ़ जाए, तो तमस की तरफ झुक जाएं। दोनों को साधते रहें। और जब दोनों बिलकुल सध जाएं, तो आपकी वर्टिकल यात्रा सत्व की तरफ शुरू होगी। फिर तीनों के बीच साधना पड़ेगा। वह और भी गहरी कीमिया है। दो के बीच साधना बहुत आसान है। दो के बीच साधेंगे, तो सत्व में उठ जाएंगे।

साधु उसे कहते हैं, जो सत्व में पहुंच गया है, जिसने दो को साध लिया। जो तमस और रजस के बीच संतुलित हो गया, उसका नाम साधु है। जो रजस, तमस और सत्व तीनों के बीच सध गया, उसका नाम संत है। वह बहुत अलग बात है। जब तीनों के बीच कोई साधता है, तो सेंटर पर पहुंच जाता है ट्राएंगल के। वह सेंटर ही द्वार है ट्राएंगल का। तीन शक्तियों के बीच में वह स्पेस है, खाली जगह है, जहां से व्यक्ति परमात्मा में, ब्रह्म में प्रवेश कर जाता है।

लेकिन यह धीरे–धीरे हम बात करेंगे, तो खयाल में आएगी। पहले साधु बनें, दो के बीच साधें। फिर संत बनें, तीन के बीच साधें। और जिस दिन तीन के बीच सधा, उस दिन बनना बंद हो जाता है, उसी दिन परमात्मा में प्रवेश हो जाता है। उस दिन प्रकृति के तीनों गुणों के बाहर आदमी हो जाता है।

इसलिए प्रकृति है त्रिगुणा और परमात्मा है त्रिगुणातीत, वह तीनों के बाहर है।'

गोंसाई गिरिलाल भौने चाकूरे जाबि कोन शाधोने
धौर गा गुरुर श्रींचौरोने नोइले जावा हौबे ना।।

प्रेम–रस–भक्ति से ही हरि को बांध सकते हैं। गोविंद के चाकर होकर, गुरु चरणों से लग जाओ। गुरु ही वह मांझी हैं जो दरिया के पार ले जावेंगे।

बाउल फकीर न योग को मानते हैं, न ही तंत्र को मानते हैं। वे किसी विधि को नहीं मानते हैं। वे सहजता में भरोसा करते हैं और जीवन का पूरा सम्मान करते हैं। वे कहते हैं कि प्रेम रस भक्ति से ही हरि को बांध सकते हैं, और कोई उपाय नहीं है। सरलता से, सहजता से, सुगमता से भवसागर पार हुआ जा सकता है। जटिलता में, कठिनता में, ज्ञान और कर्म में उलझनें और बढ़ेंगी। कबीर साहब गाते हैं–

पोथी पढ़–पढ़ जगमुआ पंडित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।

इस ढाई अक्षर का भी बड़ा महत्त्व है। या तो दो को जोड़ दे या दो को मिटा दे, वह है ढाई। ज्ञाता और ज्ञेय में हमेशा दूरी बनी रहती है लेकिन प्रेम मार्ग और भक्ति मार्ग में दूरी मिट जाती है। त्रैत गया, फिर द्वैत भी मिट गया, अब एक ही रह गया। कबीर जिसके लिए कहते हैं–

प्रेम गली अति सांकरी तामे दो न समाय,
जब मैं था तब हरि नहीं जब हरि हैं मैं नाहिं।

वहां केवल एक बचता है। प्रेम ही एक मात्र मार्ग है जिससे हरि को पाया जा सकता है। हरि को जाना जा सकता है। हरि हुआ जा सकता है।

(प्रवचन – 11)

मानुष-तन है सच्चा तीर्थ!

किशेआर बोझाई मोन तोरे
देल–मौक्कार भेद ना जानिले, हौज किशे हौय रे।।
देल–मक्का खोद कूदरोति काम
खोद खोदा दैय ताइते बाराम
शेई जोन्नो नूर देल–मक्का नाम, शौर्बो शौंशारे।।
ऐक देल जारो जेयारत हौय
हाजार हाजी तार तूल्यो नौय
केताबेते साफ लेखा जाय, ताइते बोलि रे।।
मानुषेर मक्का गौठोन
मानुषे ताई कौरे भौजोन
लालोन कौय आदि मक्का कैमोन, चिनबी कौबे रे।।

भावार्थ– रे मन, तुझे में कैसे समझाऊं! तू बारंबार हज जाने की बात करता है। जब इसी दिल में तेरा मक्का मदीना है तो फिर तू हज जाने की क्यों सोचता है?

कुदरत का कमाल है जो इस दिल को मक्का बना दिया। दिल से सदा बरसता नूर है पूरे जगत को प्रकाशित करता है। यह दिल जैसी इबादत करता है कि हजार–हजार हाजी भी नहीं कर पाते।

मैं ही ऐसा नहीं कहता, किताब में भी यही लिखा है। यह मानुष तन ही मक्का है। और मनुष्य ही उसका भजन करता है। लालन कहते हैं मक्का में भी तू कैसे खोजेगा क्योंकि उसे तो पहचानता तक नहीं है?

मन परंपरावादी है, मन अतीत की स्मृतियों का भंडार है। समाज से जो सीखा है, जो शिक्षा प्राप्त की है उसी की वह बात करता है। उसने देखा है कि लोग परमात्मा को पाने के लिए हज जाते हैं, तीर्थयात्रा करते हैं। तो ये नकलची मन जब परमात्मा का प्यासा होता है तो सोचता है कि अब हमको हज करना चाहिए, मंदिर, मस्जिद, तीर्थस्थलों की यात्रा करनी चाहिए। पूजा–पाठ, उपवास, व्रत, मंत्रोच्चार आदि करने चाहिए। हजारों साल से पूर्वजगण जो करते आ रहे हैं, वही दुहराना चाहिए।

लेकिन सत्य अतीत में नहीं और क्रियाकांडों में भी नहीं है। अतीत में मन ने जो सीखा है उसी को दुहराता है। जबकि सत्य वर्तमान में है, अभी और यहीं– निष्क्रिय जागरूकता में। जिसे झेन फकीर कहते हैं नो माइण्ड, अ–मनी दशा, परमगुरु ओशो कहते हैं निर्विचार जागरण। मन सदा स्वयं से दूर जाने की बात करता है और हृदय स्वयं के निकट आने का मार्ग है। विचार और किताब, भाषा और सिद्धांत, नाना प्रकार के मत और संप्रदाय, विश्वास और दर्शन शास्त्र हमें स्वयं से तोड़ते हैं, अपने से दूर ले जाते हैं। प्रेम ही परमात्मा है जो हृदय के द्वार से हमारे पास आता है।

मन यानि बहिर्मुखता। हृदय यानि अंतर्मुखता। मन हमेशा दूर–दूर, कभी–कहीं। हृदय सदा निकट, अभी–यहीं।

देल–मौक्कार भेद ना जानिले, हौज किशे हौय रे।

हे मन, तुझे कैसे समझाऊं कि हज जाने से बात नहीं बनती, मक्का जाने से हज नहीं हो जाएगा। अद्‌भुत सूफी फकीर मंसूर का नाम आपने सुना होगा। मंसूर को जब परमात्मा का अनुभव हुआ, उसने जब अनलहक की, अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा की तो लोगों ने बहुत विरोध किया। भीड़ की खिलाफत देखकर उसके गुरु ने कहा कि मंसूर तुम कुछ दिनों के लिए हज घूम आओ। मंसूर हंसा और अपने गुरु के सात चक्कर लगाकर बोला कि लो, मेरी हज–यात्रा पूरी हो गई। जहां गुरु है, वहीं तो तीर्थ है।

ठीक ऐसी ही गणेश की कहानी भी आपने सुनी होगी। कहते हैं कि कार्तिक पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाकर लौटे और गणेश ने केवल अपने माता–पिता के, शिव–पार्वती के चक्कर लगाए और बात पूरी हो गई। केवल भाव की बात है। जिस क्षण भाव घनीभूत हुआ बात बन जाती है। क्योंकि परमात्मा भावना से पाया जाता है, विचारणा से नहीं। प्रेम से मिलता है प्रभु, गणित से नहीं।

देल–मक्का खोद कूदरोति काम
खोद खोदा दैय ताइते बाराम
शेई जोन्नो नूर देल–मक्का नाम, शौर्बो शौंशारे।।

जहां कभी कोई गुरु रहा है, जहां कहीं गुरु ने अपने शिष्यों को साधना करवायी, वहीं तीर्थस्थान बन गए। जहां गुरु–शिष्य के बीच प्रेम की, श्रद्धा की जलधारा बही थी, वह नदी पावन हो गई। मगर कालांतर में वह जीवंतता विदा हो जाती है, सरिता सूख जाती है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। एक उदाहरण से समझो। एक बहुत सुंदर बिल्डिंग है जहां कोई बहुत नामी–गिरामी डॉक्टर की प्रसिद्ध क्लिनिक थी। वह डॉक्टर जब शरीर में नहीं रहा तो उस बिल्डिंग का क्या करोगे? उस भूतपूर्व अस्पताल में जाकर क्या तुम्हारा इलाज हो सकता है? उसके चक्कर लगाने से स्वास्थ्य मिलेगा?

समाज के द्वारा संस्कारित मन तीर्थ और हज जाने की बात करता है। क्या शिक्षक–विहीन भूतपूर्व पाठशाला में जाकर पढ़ना संभव है? गुरु–विहीन तीर्थ में परमात्मा पाया जा सकता है, निर्मलता घट सकती है? ऐसा होना नामुमकिन है। हम उस पुरानी हास्पिटल में नहीं जाते जहां कोई नामी डॉक्टर बैठा करता था इसका मतलब यह नहीं है कि हम उसको नकार रहे हैं। उस बिल्डिंग का सम्मान अभी भी मन में है, लेकिन उस बिल्डिंग में जाकर कोई भी मरीज ठीक होने वाला नहीं है, ठीक ऐसे ही तीर्थ और हज जाकर परमात्मा नहीं मिलने वाला।

बुद्ध को जिस बोधिवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था, पिछले ढाई हजार सालों में अरबों लोग वहां जाकर ध्यान लगाने का प्रयास किए, मगर एक नकलची को भी बुद्धत्व न घटा। और जरा सोचो, गौतम बुद्ध ने किसकी नकल की थी? किसी की भी नहीं। उस समय वह एक बेनाम साधारण सा वृक्ष था, प्रसिद्ध तीर्थ नहीं था। पर्यटक स्थल नहीं था। स्मरण रहे वृक्ष की

वजह से ज्ञान नहीं उपलब्ध हुआ। कुछ विशिष्ट बुद्ध के भीतर हुआ था, संयोग की बात, उस समय वे उस वृक्ष के नीचे बैठे थे। हम ऊपरी स्थूल तथ्यों को पकड़ते हैं, आंतरिक सूक्ष्म सत्य से चूक जाते हैं।

जिस्म की बात नहीं है अपने दिल तक जाना है।
लंबी दूरी तय करने में वक्त तो लगता है।
नए परिंदों को उड़ने में वक्त तो लगता है।

लोग शार्टकट की सोचते हैं कि बस थोड़ा सा समय लगे, हज करके आ जाएं, तीर्थ घूम–फिर आएं। बच्चों का सैर–सपाटा हो जाएगा, महिलाओं की शॉपिंग हो जाएगी और जन्मों–जन्मों का पुण्य भी अर्जित कर लेंगे। ऐसी दृष्टि से भ्रमण कर रहे यात्री–दल वैसे ही हैं जैसे अन्य जगहों पर जाने वाले पर्यटकों के समूह। पहुंचे, फोटोग्राफ लिए, दर्शन किए, प्रसाद पाया, चढ़ोतरी चढ़ाई, अगले दिन दूसरे तीर्थ को निकल गए। सप्ताह भर में खूब पुण्य अर्जित कर लिया... स्वर्ग की टिकिट पक्की हो गई। वापिस संसार में लौटकर वही पुरानी जीवन–शैली! काश, इस प्रकार धर्म–साधना संभव होती!!

शिष्य–भाव को घनीभूत होने में वक्त लगता है। पुराने तीर्थ का सम्मान चाहे जितना करो, सिर झुकाओ, फूल चढ़ाओ, लेकिन वहां जाने से असली बात बनने वाली नहीं। असली तीर्थ वही है जहां जीवित गुरु की मौजूदगी है। आइए, ओशो के अमृत–वचन सुनते हैं–

प्रश्नकर्ता– 'पृथ्वी पर अभी भी असंख्य मंदिर, मस्जिद, गिरजे और गुरुद्वारे हैं, जहां विधिविहित पूजा–प्रार्थना चलती है। क्या आपके देखे, वे सबके सब व्यर्थ ही हैं?'

ओशो– 'अगर व्यर्थ न होते तो पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आया होता। अगर व्यर्थ न होते– इतनी पूजा, इतनी प्रार्थना, इतने मंदिर, इतने गिरजे, इतने मस्जिद– अगर वे सब सच होते, अगर ये प्रार्थनाएं वास्तविक होतीं, हृदय से आविर्भूत होतीं, तो पृथ्वी स्वर्ग बन गई होती। लेकिन पृथ्वी नरक है। जरूर कहीं न कहीं चूक हो रही है।

या तो परमात्मा नहीं है, इसलिए प्रार्थनाएं व्यर्थ जा रही हैं; या प्रार्थनाएं ठीक नहीं हो रही हैं, और परमात्मा से संबंध नहीं जुड़ पा रहा है। बस दो ही विकल्प हैं।

मांग रहे हैं लोग– मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में, शिवालयों में– प्रार्थना नहीं हो रही है।'

खुदा एक एहसास का नाम है,
रहे सामने और दिखाई न दे।

यह तो अनुभव की बात है, संवेदना की बात है। जब अपने भीतर एहसास हो गया तब हम देखेंगे कि सर्वत्र, सबके भीतर वही मौजूद है। देखने की कला विकसित करनी होगी। जगह नहीं बदलनी है, दृष्टि साफ करनी है। फिर घर ही मंदिर है, दुकान ही मठ है, कर्म ही पूजा है। जीवन ही परमात्मा है।

सूफी गाते हैं–

हाजीं लोक म केनू जांदे मेरा रांझा माही मक्का, नीं मैं कमली हा।

मैं दीवानी हूं गुरु की, हाजीं लोग तो मक्के में जाते हैं लेकिन मेरा हज तो वहां हो गया जहां मेरा सद्गुरु बैठा है। गुरु–चरणों में तीर्थ है।

ते मग हाजीं ते होइयां मेरा बाबुल करदा धक्का, नीं मैं कमली हा।

मैं तो अपने गुरु की हो गई, मेरी तो सगाई गुरु से हो गई। लेकिन लोग जबरदस्ती मुझे समझाते–बुझाते हैं लेकिन बात बनने वाली नहीं, मेरा तो गठबंधन ही गुरु से हो गया है। मेरा गुरु तो मेरे दिल में बैठा हुआ है, अब तो यह दिल ही मक्का हो गया है। हाजी लोग मक्के में जाते हैं लेकिन हमें तो ध्यान में डूबकर वहीं जाना है जहां सहस्रदल कमल खिलता है। वही हमारे मंदिर का शिखर है।

जित बल यार उते बल काबा अब खोल किताबा चारे, नीं मैं कमली हा।

जहां मेरा गुरु है, जहां मेरा यार है वहीं काबा है। और यह सिर्फ मैं ही नहीं कह रहा हूं, यही तो चारों किताबों में लिखा हुआ है। कुरान, गीता, बाइबिल व वेदों में सब जगह लिखा हुआ है। सब ग्रंथों में पाओगे कि गुरु के चरण कमलों में ही तीर्थ है। गुरु ही तीर्थंकर है, तीर्थ बनाने वाला है। घाट निर्मित करके उस पार ले जाने वाला है।

ऐक देल जारो जेयारत हौय
हाजार हाजी तार तूल्यो नौय
केताबेते साफ लेखा जाय, ताइते बोलि रे।।

विचार से बात नहीं बनती, दिमाग से दिल की ओर आना होगा। सोचना नहीं, भावना महत्त्वपूर्ण है। ओशो तो कहते हैं लव इज गॉड, प्रेम ही परमात्मा है। तो उसका अनुभव करने के लिए हमें दिल तक उतरना होगा। हृदय की शिक्षा बाहर नहीं मिलती। बुद्धि की शिक्षा तो स्कूल और कालेजों में मिलती है। मस्तिष्क का प्रशिक्षण चलता है। लेकिन संवेदना कौन सा कालेज सिखाता है? जागरूकता, संवेदनशीलता की शिक्षा किसी युनिवर्सिटी में नहीं मिलती। हृदय की शिक्षा देने वाली पाठशाला जगत में अभी तक नहीं खुली।

संसार में जीने के लिए शिक्षा प्रणाली तार्किक, बौद्धिक, चालाक, प्रतियोगी बनाती है। किंतु अध्यात्म में डूबने के लिए हमें हार्दिक, प्रेमल, सरल, सहज, करुणामय होना होगा। जो हार्दिक होगा वही ईश्वर की अनुभूति में जाएगा। कैसे मिलेगी हार्दिक शिक्षा? धर्मग्रंथ और वेदान्तादि, सब तो तर्क सिखाते हैं। दुनिया के समस्त दर्शन शास्त्र तक–कुतर्क सिखाते हैं। दार्शनिक लोग, पंडितगण, परमात्मा के बारे में चर्चा कर रहे हैं, जबकि परमात्मा अनुभूति है। भोजन के संबंध में वाद–विवाद करने से न स्वाद मिलेगा, न ही पोषण। जितनी ही सैद्धांतिक बातचीतों में उलझते जाएंगे उतने ही हम परमात्मा से दूर निकलते जाएंगे।

बाउल कहते हैं कि निःशब्द मौन में डूबना है। मनातीत–शांति में रमना है। अपने दिल में उतरना है, अंतर्यात्रा करनी है। कैसे होगी? विचारणा से भावना पर आओ। फिर भावना से आगे है अपना होना। पहला कदम– मस्तिष्क से हृदय। दूसरा कदम– हृदय से जिस दिन हम नाभि में उतर जाते हैं उस दिन हम बाउल हो जाते हैं।

मानुषेर मक्का गौठोन
मानुषे ताई कौरे भौजोन
लालोन कौय आदि मक्का कैमोन,
चिनबी कौबे रे।।

प्रकृति की कैसी अनुकंपा है कि इसी दिल में उसने सारे खजाने छुपाकर रखे हैं। हमारी तो कोई पात्रता ही नहीं है। इसी दिल में, अंतरात्मा में उसने प्रकाश, नूर भर दिया है। अनहद–नाद की गुंजार भर दी है। इस नाद–नूर में जो भीगता है, आलोक–ओंकार रूपी परमात्मा में डूबता है, वह खुद एक दिन मिट जाता, और खुदा हो जाता है। यही असली इबादत है– झुकना। यही सच्ची पूजा है– मिटना।

इश्क ने राज ये अब तक न बताया गौहर,
सर झुकाने के लिए है या कटाने के लिए?
कितने परवाने जले राज ये पाने के लिए
शम्मा जलने के लिए है या जलाने के लिए?

अहंकार रूपी सर का झुकना ही असली इबादत है। मगर तथाकथित धार्मिक लोग, तीर्थयात्री, हाजी इत्यादि तो सामान्य व्यक्ति से भी अधिक अभिमानी हो जाते हैं। चीन का सम्राट बू, भिक्षु बोधिधर्म के चरणों में आकर झुकता है तो बोधिधर्म कहता है कि तुम खड़े क्यों हो? खड़े रहने से परमात्मा नहीं मिलता, झुकने से परमात्मा मिलता है। बू कहता है कि मैं तो आपके चरणों में पांच बार झुक चुका हूं लेकिन बोधिधर्म कहता है कि शरीर के झुकने से क्या होता है, तुम नहीं झुके हो! तुम्हारी देह की कवायद हो गई किंतु भीतर देखो, तुम तो अकड़े ही खड़े हो।

शरीर का झुकना, असली झुकना नहीं है। जब हमारे भीतर का अहंकार झुके, अहंकार गले तब यह झुकना है और वही असली इबादत है। लालन कहते हैं अपनी देह रूपी मक्का में भी तू कैसे खोजेगा क्योंकि उसे तो पहचानता तक नहीं है? पहचान गुरु कराता है। कैसे पहचानोगे कि इस दिल में परमात्मा का प्रकाश कैसा है, उसकी आवाज कैसी है? गुरु की अंगुली ही परमात्मा के चांद की ओर इशारा करती है और हमारी आंखें उस ओर, अंतरात्मा में देखने में सक्षम हो पाती हैं।

भावना में डूबना सीखो। गुरु–चरणों में झुकना सीखो। भीतर झांकना और सुनना सीखो। गुरु के इशारे पहचानना सीखो। सत्य को पाना कठिन नहीं है, असत्य को छोड़ना मुश्किल है। ओंकार–ज्ञान पाना तो सरल है, अहंकार–अभिमान मिटाना दुष्कर है। बाउल फकीरों जैसे साहसी ही वैसा कर पाते हैं।

खुदा करे कि खुदी को मिटाने का साहस जागे। धन्यवाद।

(प्रवचन - 12)

बाउल फकीर-प्रीति के शीतल शिखर

बाउलेर आउल कौथा बाउल बिना बोझे के।
बाउल होयेछे जे बाउलेर मौर्मो बोझे शे
रूप सौनातोन बाउल छिलो, बाहान्नो लक्खो छेड़े दिलो।
ब्रोजेर पौथेर धूला माथे नियें तारा रूपरौशे भांशे।।
जार घूचेछे शौब आउल, शे चिनेछे ओलेर मूल।
घूचाय कूटकूटि गुल पान कौरे मोधूर रौशे।।
जौतो शौब बिषौये गुल, ताते आछे गौन्डोगोल,
बिषौये गुल बाद दिये बाउल बाउले मेशे।
आमार बाउल होते छिलो शाध, माया ब्याधि बिषम बाद
कृपा कोरिं दाओ प्रोशाद, एई मोहोन दाशे।।

बाउल की आऊल यानि औलिया बातें बाउल के सिवाय कोई नहीं समझ पाता। बाउल ही बाउल के मर्म को पहचानता है।

बंगाल के रूप सनातन ऐसे बाउल हुए जो बहुत अमीर थे लेकिन भगवत भक्ति के लिये ब्रज की धूल को ही सर्वस्व मानकर प्रभुरस में डूबे रहे।

जिसने सब व्यर्थ की बातें छोड़ीं, वहीं मूल को जान पाता है। जब चालाकियाँ, होशियारियां छूट जातीं हैं तभी अनमोल रस को जाना जा सकता है।

विषय माया में फंसने वाला या मन में गोल–मोल खोटीं बातें सोचने वाला सच्चा बाउल नहीं कहलाता। बाउल में तो सच्ची भक्ति और प्रेम–सहजता होतीं है।

प्रेम के विषय में किसी शायर ने अर्ज किया है–
मोहब्बत को समझना है तो खुद मोहब्बत कर नासेह।
किनारे से कभी नहीं होता है अंदाजे तूफां।।

यही बात मीराबाई अपने निराले अंदाज में कहतीं हैं–
घायल की गति घायल जाने, और न जाने कोय।
हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दर्द न जाने कोय।
जौहर की गति जौहर जाने....

सती की दशा वही स्त्री जान सकती है जो सती हो। जब तक कोई घायल नहीं हुआ है तो वह दूसरे घायल की पीड़ा को कैसे समझ सकता है? न दर्द समझा जा सकता, न आनंद। ज्ञान भीतर होता है, बाहर तो केवल अनुमान होता है। प्रेमी ही दूसरे के प्रेम को महसूस कर सकता है। विरह को जिसने जिया है वही एक भक्त के विरह को समझ सकता है। फीलिंग सब्जेक्टिव नॉलेज है, दूसरा समझ भी कैसे सकता है, जो उसमें जी रहा है बस वही जानता है। इसलिए मीराबाई को कहना पड़ता है–

भगत देख राजी भई, जगत देख रोई।

जगत की दुर्दशा देखकर रोना आता है, भगत को देखकर शांति मिलती है। लगता है कि कोई तो समझने वाला मिला, जिसके साथ समतरंगित हुआ जा सकता है।

दिखाने के हैं सब, दुनिया के मेले।
भरी बज्म में हम, जी रहे अकेले।।

बाउल फकीर तो प्रीति के शीतल शिखर हैं। जितनी चेतना ऊंची उठती जाती, उतनी सबसे दूर और अकेली होती जाती। सच्चा बाउल भरे बाजार में भी अकेले रहता है। सारी भीड़ उसके चारों ओर है फिर भी वह एकांत में है। उसकी देह तो पृथ्वी पर है लेकिन उसकी सुरति प्रतिपल परमात्मा से लगी हुई है। ऐसा होता है सच्चा बाउल। जब तक कोई बाउल न हो जाए तो भला कैसे समझेगा बाउल की इन प्यारी बातों को।

ऐसा ही एक परमात्मा की दीवानी राबिया हुई। जितने भी हिंदू भक्त हुए, चाहे सूफी हों, चाहे यहूदी फकीर हों, जो भी परमात्मा के दीवाने हैं वे सब बाउल हैं। बाउल यानि परवाने, बावरे, दीवाने, मस्ताने। एक संध्या हसन नामक फकीर, राबिया से मिलने जाता है। उस समय सूर्यास्त हो रहा था। वह राबिया को पुकारता है कि झोपड़ी से जरा बाहर आओ और देखो कितना सुंदर सूरज ढल रहा है। कैसे प्यारे रंग बिखरे हैं आसमान में!

राबिया ने भीतर से आवाज लगाई कि मैं उस मालिक को देख रही हूं जिसने सूरज बनाया है। उस मालिक का दीदार कर रही हूं जो इस सूरज से पहले भी था और सदा रहेगा। उस रंगरेज के दर्शन कर रही हूं जिसने रंग फैलाए हैं।

एक और घटना राबिया के जीवन की। वह घर से बाहर निकलती है कुछ खोजने के लिए। लोग पूछते हैं कि क्या खोज रही हो? राबिया बोलती है कि मेरी सुई खो गई है। वे लोग भी साथ में ढूंढ़ने लगते हैं। काफी देर बाद एक व्यक्ति ने पूछा कि किस जगह पर सुई गिरी थी? राबिया बोली कि ये तो पता नहीं कि कहां गुमी है। शायद झोंपड़ी के अंदर ही गिरी होगी! लोग हंसने लगे कि कैसी दीवानी औरत है, पता नहीं है कि कहां खोई है सुई और खोजने निकल पड़ी बाहर... और हम सबको नाहक में परेशान कर रही है।

राबिया मजाक उड़ा रही है सभी धार्मिक खोजियों का। परमात्मा कभी खोया नहीं है, वह भीतर मौजूद है। लेकिन हम बाहर संसार में खोजने के लिए निकलते हैं और बुरी तरह थक-हार जाते हैं। मंदिर-मस्जिदों में, तीर्थस्थानों में, शारीरिक क्रियाकांडों में प्रभु को खोज रहे हैं लोग।

लोगों को चाहिए प्रेम, आनंद, सहजता और इनकी तरफ संकेत मिलते हैं जहां बाउल किस्म के लोग रहते हैं। बाउल किस्म का हृदय जहां धड़कता है। बाउल हृदय यानि बाबरा मन। और बाउल इशारा करता है स्वयं के अंतस में डूबने का। खजाना खुद में छिपा है।

आंतरिक दरिद्रता को मिटाने के लिए लोग धन कमाते हैं। किंतु धन पाकर ही ज्ञात होता है कि भीतरी गरीबी मिटी नहीं। सामान एकत्रित हो गया, लेकिन समृद्धि नहीं आई, शांति नहीं मिली, संतुष्टि नहीं घटी। तभी तो बुद्ध और महावीर जैसे राजकुमार भिक्षु बन जाते हैं। बहुत

अमीरी में जीने वाले बंगाल के रूप सनातन नामक बाउल फकीर बनकर बृज में आ बसे। जिनके पास सब कुछ था वे सब छोड़कर आ गए। जिनके पास कुछ नहीं है वे सब कुछ पाने के लिए संसार में निकल जाते हैं। जो भीतर का खालीपन है उसे भरने के लिए लोग दुनिया में भटकते फिरते हैं। क्या हुआ महावीर को, क्या हुआ बुद्ध को जो सब राजपाट छोड़कर जंगल चले गए। महल छोड़ने के बाद उन्हें जो मिला उसके बाद तो उन्होंने शहंशाहों को भी मात दे दिया।

'बादशाह राम के हुक्मनामे' सबने सुने हैं। स्वामी राम के पास बाहर से देखने के लिए तो कुछ भी नहीं था लेकिन फिर भी वे अपने आपको बादशाह कहते थे। असली शहंशाह वह है जिसे परमात्मा मिल गया, जिसके भीतर का भिखारीपन समाप्त हुआ, जिसकी मांग मिट गई। जो भीतर से तृप्त हो गया है वह बादशाह है। वरना तो अकबर महान हो कि विश्वविजेता सिकंदर, सभी भिखारी हैं। उनको भी संतोष नहीं मिला।

रूप सौनातोन बाउल छिलो, बाहान्नो लक्खो छेड़े दिलो।

ब्रोजेर पौथेर धूला माथे नियें तारा रूपरौशे भांशे।।

शेख फरीद नामक एक सूफी संत एक बार सम्राट अकबर के पास जाता है और देखता है कि वह भी परमात्मा से मांग रहा है कि हे परवरदिगार मेरे राज्य को और बड़ा कर दे। मेरी सेनाओं को ज्यादा सशक्त बना। मेरी विजय पताका दूर-दूर तक फहराए।

फरीद उल्टे पैर वहीं से वापिस लौट जाता है कि इस भिखारी से क्या मांगना, जो खुद ही अपने राज्य को बड़ा करने के लिए प्रार्थना कर रहा है। राज्य तुम्हारा कितना भी बड़ा हो जाए लेकिन जब तक भीतर भराव नहीं आएगा तुम भिखारी ही रहोगे। यह भीतर की दरिद्रता मिटेगी परमात्मा के प्रेम से, भक्तिभाव से। प्रभु-प्रेम असली भराव लाता है, प्रेम असली तृप्ति लाता है।

जार घूचेछे शौब आउल, शे चिनेछे ओलेर मूल।

घूचाय कूटकूटि गुल पान कौरे मोधूर रौशे।।

जब चालाकियां होशियारियां छूट जाती हैं तभी अनमोल रस को जाना जा सकता है। तो प्रभु के खोजियो, चालाकियां और होशियारियां छोड़ो। वह परमधन तुम्हारे अंतस में है, किसी से छीनना नहीं है। चालाकी, बेईमानी, प्रतियोगिता, शोषण आदि का सवाल ही नहीं उठता। सुनो कबीर का वचन-

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या?

हम सरल हैं, प्रेम में मगन हैं। सारी दुनिया चतुर है लेकिन मैं ही बौरा हूं ऐसा कबीर साहब कहते हैं। मेरे बाबा, मैं बौरा सब खलक सयानी! मैं तो बौरा हूं लेकिन सब होशियार हैं। मैंने कुछ पढ़ा-लिखा नहीं है, मुझे तर्क नहीं आता है, वाद-विवाद नहीं आता है लेकिन हरि के गुण में ऐसा रंग गया, ऐसा डूब गया कि मैं बावला हो गया हूं। मैं तो बिगड़ गया, तुम मत बिगड़ना, ऐसा व्यंग्य कर रहे हैं कबीर साहब, तुम अपनी चालाकियां सम्हाल कर रखना, मेरे जैसे तुम मत बिगड़ जाना। लेकिन ये चालाकियां संसार में काम आएंगी, ये होशियारियां परिधि पर काम आती हैं। आत्मा के केन्द्र में चालाकियां कीं तो चूक जाओगे, केन्द्र में टिक ही नहीं पाओगे। परिधि पर फेंक दिए जाओगे।

परमात्मा है मूल जैसा, परमात्मा जड़ है, संसार पत्ते जैसा है। तो परमात्मा तक अगर जाना है तो चालाकियां, होशियारियां छोड़नी पड़ेंगी, परिधि पर रहना है तो चालाकियां जरूरी हैं, बाहर की चीजों को पाने के लिए हमें कुछ दांव-पेंच सीखने होंगे तभी लोग सफलता की ओर अग्रसर हो पाते हैं। यह संसार का नियम है। लेकिन भीतर तो परमात्मा मौजूद ही है, वहां कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। मेरा ध्यान कोई नहीं खींच सकता, मैं किसी का ध्यान नहीं छीन सकती, मेरा परमात्मा उतना ही है जितना आपका परमात्मा है। वहां कोई स्पर्धा नहीं है इसलिए वहां चालाकी का कोई काम नहीं है। तो चालाकी और होशियारी जो छोड़ता है वही अपने केन्द्र तक पहुंच पाता है। जो केन्द्र तक पहुंच पाता है वह सहज परम धन को पा लेता है। स्व को उपलब्ध सर्वस्व प्राप्त हो जाता है।

यह प्रेमभक्ति है ऐसी, जाने बिरला कोइ।
हृदय कलुषता क्यौं रहै, जा घट में यह होइ।
जिस हृदय में भक्ति आ गई वहां कलुषता कहां, वहां चालाकी कहां?
ऐसी हालत होती है भक्त की-
कबहूँ कै हँसि उठय, नृत्यकरि रोवन लागय
कबहूँ गदगद कंठ, शब्द निकसै नहिं आगय।
कबहूँ हृदय उमंगि, बहुत उच्चय स्वर गावै।
कबहूँ कै मुख मौनि, मग्न ऐसैं रहि जावै।
यह प्रेमभक्ति है ऐसी, जाने बिरला कोइ।
हृदय कलुषता क्यौं रहै, जा घट में यह होइ।

कभी हंसने लगता है उसकी याद में, कभी रोने लगता है। कभी नाचने लगता है। कभी उसके आनंद में नृत्य कर लिया, उत्सव मना लिया। कभी उसकी विरह में डूब गया और रोने लगा। लेकिन इस बात को एक बाउल ही समझ सकता है- अहोभाव के आंसू। बाउल ही समझ सकता है ये विरह के आंसू। कभी ऐसे गला रूंध जाता है कि मुख से शब्द नहीं निकलते। और लोग सोचते हैं कि पागल है। लेकिन इस बात को जिसने महसूस किया वह जान जाएगा, वह समझ जाएगा, एक दीवाना दूसरे दीवाने की बात को पहचान जाएगा। कभी बड़ी उमंग आ जाती है, ऊंची आवाज में गाने लगते हैं और कभी ऐसा मौन घटता है कि उसी में कई दिन बीत जाते हैं। सन्नाटे को भी मात दे, ऐसा मौन घटित हो जाता है। कोई बाहर से देखेगा कि अरे, शांत बैठा हुआ है... ये कैसा बाउल है, इसको तो नाचना चाहिए। नहीं, बाउल है तो शांत भी होगा, नाचेगा भी, गाएगा भी, रोएगा भी इसलिए बाउल की बातें बाउल ही समझ सकता है।

आइए इस संदर्भ में परमगुरु ओशो की अमृत-वाणी सुनें-

'हमारे अहंकार ने बड़ी मुश्किलें खड़ी कर ली हैं। हमारा अहंकार जो सरलता से मिल जाए, उसके लिए राजी नहीं होता। अहंकार कहता है: पहाड़-पर्वत चढ़ने पड़ेंगे। ऐसा हाथ फैलाने से जो मिल जाए, घर बैठे जो मिल जाए, अहंकार उससे राजी नहीं होता, भरोसा नहीं

करता। महावीर को मिला होगा, मीरा को कैसे मिला?

मीरा का नृत्य आकस्मिक है– क्योंकि भक्ति आकस्मिक है! इस बात को ठीक से समझ लेना। भक्ति की कोई साधना नहीं है; भक्ति सिद्धि है पहले ही क्षण से; सिर्फ बोध की बात है।

कभी उन मदभरी आंखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं।

एक बार झलक मिल जाए, बस काफी है। एक बार परमात्मा की प्रतीति आ जाए, एक बार ऐसे समझ उठ खड़ी हो बिजली की कौंध की तरह कि वह उपलब्ध है, मैं रुका किसलिए, प्रतीक्षा किसकी करता हूं– तो जो नृत्य शुरू होता है, उसका फिर कोई अंत नहीं।

कभी उन मदभरी आंखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं।

भक्ति का होश बेहोशी जैसा है। भक्त का ध्यान तल्लीनता जैसा है। भक्त का होना, न होने जैसा है। भक्त अपने को खोकर ही पाता है। भक्त अपने को डुबाता है, जैसे बूंद गिर जाए सागर में। भक्त जुआरी है।

बूंद जब सागर में गिरती है तो पक्का क्या है कि बचेगी! पक्का क्या है कि खो ही न जाएगी सदा को? पक्का हो भी नहीं सकता। गारंटी होगी भी तो कैसी होगी, कौन देगा?'

विषय माया में फंसने वाला या मन में गोल–मोल खोटी बातें सोचने वाला सच्चा बाउल नहीं कहलाता। बाउल में तो सच्ची भक्ति और प्रेम–सहजता होती है। जो प्रेम सहज नहीं, वह प्रेम ही नहीं। असहजता, नकल, बनावटीपन, दिखावा, आडंबर आदि सच्ची भक्ति के अंग नहीं।

आमार बाउल होते छिलो शाध, माया ब्याधि बिषम बाद
कृपा कोरि दाओ प्रोशाद, एई मोहोन दाशे।।

विषमता ही व्याधि है और समता समाधि है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि समत्व योग सर्वोपरि है, सब योगों में सर्वोच्च है। हानि लाभ में, निंदा स्तुति में, मान अपमान और दुख सुख में जो समभाव रखता है वही समत्व योग को उपलब्ध होता है। और भक्त के लिए यह समता साधनी नहीं पड़ती, स्वतः घटित हो जाती है। भक्त का अपना कुछ नहीं है। सुख उसकी भेट है, दुख उसका उपहार है। ये सुख भी परमात्मा का, दुख भी परमात्मा का, मान भी परमात्मा का, अपमान भी परमात्मा का, ये हानि भी परमात्मा की, ये लाभ भी परमात्मा का। मेरा मुझमे कुछ नहीं, जो कुछ है सब तेरा। और इस तरह से वह समत्व बुद्धि को उपलब्ध हो जाता है। वही चेतना का पर्वत है। प्रीति का शिखर है।

धन्यवाद। नमस्कार।

(प्रवचन – 13)

खुद में खुदा खोजो रे भाई!

जे खोंजे मानुषे खोदा शेई तो बाउल।
बोस्तुते ईश्और खूँजे पाय तार उल।।
पूर्बो पूनौर्जौन्मो ना माने,
चोक्खू ना देय ओनूमाने
मानुष भौजे बौर्तोमान, हौय रे कबूल।
बेद तुलशी माला टेपा,
एशौब तारा बौले धोका
शौयताने दिंये धाप्पा, शौब कौरे भूल।
मानुषे शौकोल मेले, देखे शुने बाउल बौले,
दीन दुद्दू कि बौले, लालोन साँईजीर कूल।।

जो मानव देह में हीं खुदा को देखता है वो हीं सच्चा बाउल है। परमात्मा कोई वस्तु नहीं है, जो उसे वस्तु मानता है वो उल–जलूल चींजें ढूंढ़ रहा है।

बाउल पुनर्जन्म नहीं मानता अनुमान या कल्पना में नहीं जीता। वर्तमान को हीं सब कुछ मानकर उसे कबूल करता है।

वेद पढ़ना, तुलसी माला फेरना; यह सब तो मन का खेल है। इसलिये खुद को धोखा मत दे। इस मानव देह में हीं वो परमात्मा बसता है।

दद्दू शाह कहते हैं कि मेरे गुरु लालन सांई ने बताया है कि मानव देह में हीं वह रतन–धन बसा है। केवल मन या आंखों से खोजने पर तू उसे नहीं पा सकता। गुरुचरणों में सब कुछ भूलकर पूर्ण समर्पित हो जा।

आज का गीत दद्दू शाह जी का गीत है। दद्दू शाह जी उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जन्मे और ये लालन शाह जी के शिष्य हुए। इनके गीतों में लालन जी की छाया मिलती है। ऐसा लगता है कि वे अपने गुरु की बांसुरी हो गए और गुरु ने अपने बांसुरी रूपी शरीर में अवतरित हो रहे प्रभु के स्वर उनकी बांसुरी में फूंक दिए। बिल्कुल उनकी ही प्रतिध्वनि लालन के गीतों में मिलती है। सारा संगीत तो उस एक अनाम ऊर्जा का हीं है। समानता होनी स्वाभाविक है!

लालन जी कहते हैं कि अगर हम बाहर परमात्मा को ढूंढ़ने निकल गए तो ये ऐसा ही है कि घनी अमावश की रात, एक काले अंधेरे कमरे में हम काली बिल्ली को खोज रहे हैं

जो कि वहां है ही नहीं! वह कभी नहीं मिलने वाली है। मिल गई तो जानना कि तुमने कल्पना कर ली। ऐसे ही खोजते हुए कितने लोग जीते हैं और बिना पाये ही चले जाते हैं।

जे खोंजे मानुषे खोदा शेई तो बाउल।

बोस्तुते ईश्और खूँजे पाय तार उल।।

परमात्मा व्यक्ति नहीं, समष्टि है। पदार्थ की आकृति, रूपरेखा होती है। पदार्थ जड़ है। प्रभु अरूप, निराकार, चैतन्य है। सर्वाधिक निकट, आत्मगत, सब्जेक्टिव खोज, खुद के भीतर मानव देह में संभव है। वस्तुगत यानि आब्जेक्टिव माना तो उल–जलूल खोज शुरु हो जाएगी। भ्रांतियों में, कपोल कल्पनाओं में भटकन आरंभ हो जाएगी।

मनुष्य में जो खुदा को खोजता है, परमात्मा को खोजता है वही बाउल है। परमात्मा वस्तु तो नहीं है जिसने भी ऑब्जेक्ट के रूप में खोजा, वह दिग्भ्रमित हो जाता है। असली बात है कि हमें अपने भीतर लौटना है। जब हम अपनी ओर यात्रा शुरू करते हैं तो सबसे पहले अपने शरीर से मुलाकात होती है, तो पहले तन और उसके बाद मन, और मन के भीतर जाने पर चेतन से मुलाकात होती है। तन, मन, चेतन, कोठरी के भीतर कोठरी। तन के द्वारा हम धीरे–धीरे मन की ओर आते हैं।

मंदिर अर्थात मन के अन्दर! मन एक ऐसा दर है, दरवाजा है जिसके माध्यम से हम बाहर गए थे और उसी दरवाजे के माध्यम से अपने भीतर भी आ सकते हैं। जहां से हम संसार में गए थे वहीं से हम अध्यात्म में लौट सकते हैं। इसलिए जो असली संत हैं वे मन को कोसते नहीं हैं। वे कहते हैं, 'हे मेरे मन हरि नाम के पक्के रंग में रंग जाओ, अब संसार के कच्चे रंगों को भूल जा और ऐसा पक्का रंग तू चुन ले जो कि कभी नहीं छूटता। गुरु अर्जुनदेव जी भी गाते हैं –'इहु मन सुंदरि आपणा हरिनाम मजीठे रंगि री।'

मन के दरवाजे से जब हम भीतर आते हैं तो भीतर हम अपनी चेतना को पाते हैं, चैतन्य स्वरूप को जानते हैं। ईश्वर को जो भी मंदिर में, मस्जिद में, काबा में, काशी में खोजने गया है वह वैसी भूल कर रहा है जैसी कि सदियों से लोगों ने की है। परमात्मा निकट से भी निकट है, पास से भी पास है हमारे।

पूर्बो पूनौर्जौन्मो ना माने,

चोक्खू ना दैय ओनूमाने

मानुष भौजे बौर्तोमान, हौय रे कबूल।

बाउल पूर्व जन्म को नहीं मानता, बाउल पुनर्जन्म को नहीं मानता और न ही अनुमान में जीता है। जो जानता है वह अनुमान में नहीं जीता है। हम अनुमान में थोड़ी जिएंगे कि

शायद सूरज है। हम जानते हैं कि सूरज है, अनुमान की तो जरूरत ही नहीं है। इसलिए जो जानते हैं वे अनुमान में नहीं जीते और जो अनुमान में जीते हैं समझ लेना कि वे जानते ही नहीं।

बाउल पूर्वजन्म को और न ही अपने प्रारब्ध को मानते हैं। वे जानते हैं कि पूर्वजन्म को मानेंगे, प्रारब्ध को मानेंगे तो फिर हमने चुन ली कल की दिशा। परमात्मा कल नहीं है, परमात्मा तो अभी और यहीं है। जो वर्तमान में भजन करता है, अभी और इसी पल में अनुग्रह पूर्वक जीता है, उसकी प्रार्थना कुबूल होती है, वह परमात्मा के द्वार पर पहुंच जाता है। तो असली विधि है कि वर्तमान में हो जाओ।

एक किस्सा है कि एक नास्तिक आदमी था उसने अपने घर के बाहर एक बोर्ड पर लिखा हुआ था 'गॉड इज नो व्हेयर'। एक दिन उसका बच्चा, जो कि अभी-अभी पढ़ना सीखा है, कहता है- पिताजी देखिए क्या लिखा है, 'गॉड इज नाऊ हियर'। वह व्यक्ति तो हतप्रभ रह गया। बच्चे ने अभी-अभी पढ़ना सीखा है, लंबे शब्द को दो में तोड़कर वह पढ़ रहा है गॉड इज नाउ हियर, परमात्मा अभी और यहीं है। बात बड़ी प्यारी है, परमात्मा वर्तमान में है। ओशो तो सदा-सदा कहते हैं अपने साधकों से कि लिव मूमेंट टू मूमेंट हियर एण्ड नाउ। क्षण-क्षण अभी और यहीं जीना सीख लो तो बात बन जाएगी। प्रभु का द्वार तो सामने ही है, बस प्रवेश करना है। और हजारों लोगों ने ओशोधारा में आकर यह कला सीखी है।

कैसी चली है अब ये हवा ओशोधारा में!
बंदे भी हो गए हैं खुदा ओशोधारा में।।
ना जाने क्या हुआ कि सभी झूमने लगे,
हर सांस-सांस जश्न हुई ओशोधारा में।।
ना दुश्मनी का ढब है यहां न दोस्ती के तौर
दोनों का रंग एक हुआ ओशोधारा में।।
कल की न याददाश्त न कल का कोई ख्वाब
जलसा है आज जिंदगी ओशोधारा में।।
मंजिल पे पहुंचने को दुनिया है परेशां,
राहों का मजा लूट रहे ओशोधारा में।।
यह तो है मेरे साकी-ओशो का करिश्मा,

घर–घर बना है मैकदा ओशोधारा में।।

ओशोधारा के छटवें तल के समाधि कार्यक्रम, दिव्य समाधि में साधक खुमारी का अनुभव करते हैं। जिसके लिये गुरु नानकदेव जी ने कहा है– 'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन–रात', ऐसी खुमारी जो रात–दिन चढ़ी रहती है। जिस पल हम उसका आनंद लेना चाहें, जिस पल हम उसमें डूबना चाहें उसी पल हम अपने भीतर डुबकी लगा लेते हैं। 'दिल में बसा रखी है तस्वीरे–यार, जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।'

बेद तुलशी माला टेपा,
एशौब तारा बौले धोका
शौयताने दिये धाप्पा, शौब कौरे भूल।

वेद शब्दों का संग्रह है, मन से निर्मित है, मनुष्य ने ही बनाया है। मन, समाज, शिक्षा, संस्कार; इन सबसे हटकर जो परमात्मा ने बनाया है उसमें चलो, उसमें खोजो। मनुष्य ने बनाई हैं ये माला, ये तुलसी, ये मंत्रों की भाषा; इनसे बात नहीं बनने वाली! परमात्मा ने जो ये शरीर बनाया है यहां जाना होगा, इसमें परमात्मा के हस्ताक्षर हैं। जहां परमात्मा के हस्ताक्षर हैं, वहां खोजो उसे। उसने हस्ताक्षर इस देह पर करके रखे हैं, हर प्राणी में करके रखे हैं। अगर उसे तलाशना है तो स्वयं के भीतर खोजना होगा। माला इत्यादि तो मनुष्य की ईजाद हैं। संत कबीर कहते हैं–

माला फेरत जग मुआ गया न मन का फेर रे।
करका मनका छाड़ि के मनका–मनका फेर रे।।

अब इस माला को छोड़ो जो हाथ से गिनी जाती है। भीतर एक सांसों की माला चल रही है उसके जाप करने की कला को सीखो। उसके फेरने की कला हम तभी सीख सकते हैं जब हम अपने भीतर गूंजते हुए मंत्र को जान लें। सभी इसी भूल में फंस जाते हैं– माला आदि के, विधियों के और कर्मकाण्ड के चंगुल में।

मानुषे शौकोल मेले, देखे शुने बाउल बौले,
दीन दूद्दू कि बौले, लालोन साँईजीर कूल।।

मनुष्य के शक्ल में मिलेगा परमात्मा याद रखना। संत रविदास कहते हैं–

माटी का पुतरा कैसे नचत है,
देखे–देखे, सुने बोले,
जब कुछ पावै गर्व करत है।
माटी को पुतरा कैसे नचत है!

कहि रविदास बाजी जगु भाई,

बाजीगर सउ मोहि प्रीति बनि आई।

यह संसार एक खेल है, बाजी है, और बाजीगर से मुझे प्यार हो गया है, परमात्मा से प्यार हो गया है। इसी माटी के पुतले मे वह जो चैतन्य विराज रहा है उससे हमें प्यार हो गया है।

दद्दू शाह को साईं लालन के पास परमात्मा का संदेश मिला। अपने गुरु के पास ही परमात्मा का झरोखा खुलेगा। गुरु द्वार है परमात्मा का। जो गुरु के चरणों में आ गया, जो गुरु–द्वारे आ गया वह परमात्मा की मंजिल को पा गया। दद्दू शाह ठीक ही कहते हैं कि केवल मन या आंखों से खोजने पर तू उसे नहीं पा सकता। गुरुचरणों में सब कुछ भूलकर पूर्ण समर्पित हो जा।

आंखों से खोजने का प्रयास करोगे तो पदार्थ को ही देख पाओगे। जबकि परमात्मा है अतींन्द्रिय। मन से तलाशोगे तो विचारों, कल्पनाओं, धारणाओं और सिद्धांतों के व्यूह में फंस जाओगे। मुक्त होने के स्थान पर और बुरी तरह जकड़ जाओगे। आंखों को बंद कर लो, मन को भी कहो– 'थोड़ी देर चुप'। और शांत, धैर्यपूर्वक, होशपूर्ण प्रतीक्षा करो। इसी का नाम ध्यान है। ध्यान में कहीं अहंकार न आ जाए, इसलिए गुरुचरणों में समर्पित होने की बात। प्रयास+प्रसाद। साधना+प्रार्थना। संकल्प+समर्पण। यही है मार्ग! धन्यवाद।

(प्रवचन – 14)

गुरु प्रीति रीति कोई होलो

गुरु प्रोति रोति कोई होलो।
आज हौबे काल हौबे बोले।
कौथाय कौथाय दिन गैलो।।
ईन्दु आदि शौब तो बाँधा
तारा केऊ माने ना कारो कौथा
उपाय कि कोरी बौलो।।
जे रौंग देखि ताइते आँखि
होये जाय रे बेभूलो।
दीपेर आलो देखे जैमोन।।

अनुवाद– गुरु के प्रति सहज भक्ति कहां उपजी है? रे मन, आज जागेगी, कल जागेगी, ऐसा सोच–सोच कर ही दिन बीते जा रहे हैं। मेरी इंद्रियां जैसे रूठ गई हैं वे मेरी बात नहीं मानतीं।

किस उपाय से उन्हें वश में करूँ यह सोचकर ही दिल बैठा जाता है। संसार के जिस रंग को देखूँ, मेरा मन उसी रंग में रंग जाता है। दीये की ज्योति देखकर पतंगा जैसे उसमें ही जल जाता है मेरा मन भी माया मोह के जंजाल में फंस गया है।

मैं क्या करने इस संसार में आया था उसे भूलकर व्यर्थ ही जीवन बिता दिया। नाम–रस को भूलकर पागलों की तरह फिरता हूँ। लालन फकीर कहत हैं– यज्ञ में आहुति डालने वाले सारे घी को कुत्ता ही खा गया। अर्थात जीवन भर की कमाई मेरी व्यर्थ ही चली गई।

गुरु प्रोति रोति कोई होलो।
आज हौबे काल हौबे बोले।
कौथाय कौथाय दिन गैलो।।

अस्तित्व ने हमारे भीतर एक तत्व दिया है उसका नाम है प्रीति। यह वह तत्व है जिसके माध्यम से हम दूसरों से संबंधित होते हैं, जुड़ते हैं। जब यह प्रीति अपने से छोटों से लगती है तो इसे स्नेह कहते हैं, जब यह प्रीति अपने बराबर वालों से लगती है तो यह

प्रेम होता है और जब यह प्रीति अपने से बड़ों से लगती है जैसे माता–पिता, गुरुजनों से तो यह श्रद्धा होती है। और जब यह प्रीति समष्टि से, परमात्मा से, गोविंद से लग गई तो यह भक्ति हो जाती है। श्रद्धा बड़ी कठिन बात है। श्रद्धा सर्वाधिक कठिन बात क्यों है? ये छोटी सी बात जो कि परमात्मा ने हमें सदैव के लिए दी ही हुई प्रीति यह स्नेह में लग जाती है, प्रेम में लग जाती है लेकिन श्रद्धा क्यों नहीं बनती? क्योंकि इसके बीच में हमारा अहंकार बाधा बन जाता है। किसी को स्वयं से श्रेष्ठ मानना बड़ी कठिन बात है। स्नेह करना सरल है, प्रेम करना भी सरल है लेकिन अपने से श्रेष्ठ को प्रेम करना सर्वाधिक कठिन है। मन तरह–तरह के संदेह उठाता है।

ऐसा नहीं है कि गुरु मौजूद नहीं है। ये पृथ्वी कभी भी इतनी दुर्भाग्यशाली नहीं रही कि यहां जीवंत गुरु मौजूद नहीं थे लेकिन हमारा मन सदा–सदा प्रश्न उठाता रहा। जीसस जब थे, बुद्ध जब थे, पैगम्बर जब थे, कृष्ण जब थे, ओशो जब रहे तो लोग प्रश्न उठाते रहे, प्रेम में पड़ना तो दूर की बात है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि हमारी जो शिक्षा है वह संदेह करना ही सिखाती है। इस शिक्षा ने सिखाया है तर्क करना, वाद–विवाद करना, विश्लेषण करना, इसकी यही पद्धति है लेकिन हृदय की शिक्षा किसी ने नहीं दी कि समर्पण करो, श्रद्धा करो, तो बात कैसे बने। इसके लिए हमें शिक्षित ही नहीं किया गया है। हमें शिक्षित किया गया है कि हर आदमी में होते हैं दस–बीस आदमी, जिसको भी देखना हो कई बार देखने का संदेह सिखाया जाता है। अब हृदय को सीखना होगा कि कैसे समर्पण घटित हो, कैसे गुरु के प्रति प्रेम घटित हो। गुरु हमेशा मौजूद रहते हैं। अस्तित्व हमेशा इतना मेहरबान रहता है, परमात्मा हमेशा इतना प्रेम करता रहा है मनुष्यता को कि सदा–सदा गुरु मौजूद रहते हैं। लेकिन सामने होते हुए भी गुरु के प्रति संदेह होता है। और ऐसे ही पूरी जिंदगी खत्म हो जाती है और एक दिन मौत आ जाती है।

ईन्दु आदि शौब तो बाँधा
तारा केऊ माने ना कारो कौथा
उपाय कि कोरी बौलो।।

मेरी इंद्रियां मेरे वश में ही नहीं हैं, मेरा कहना ही नहीं मानती हैं क्या उपाय किया जाए? एकमात्र उपाय है, गुरु के प्रेम में पड़ जाओ। ये इंद्रियां अभी तो बाहर के प्रेम में हैं, इनको अंदर की तरफ मोड़ना होगा। अभी तो हम संसार के प्रेम में हैं, मित्रता में हैं

इसलिए इंद्रियां सदैव बाहर की ओर भाग रही हैं। ये कान बाहर की बात सुनना चाहते हैं, ये कान मित्रता की बात सुनना चाहते हैं, आई लव यू सुनना चाहते हैं। ये आंखें बाहर का रूप देखना चाहतीं हैं, ये जीभ स्वाद लेना चाहती है बाहर की, ये स्पर्शेन्द्रिय बाहर का सुख लेना चाहती है। अब ये इंद्रियां भीतर की ओर कैसे मुड़ जाएं इसका उपाय है गुरु के प्रेम में पड़ जाओ। जब हम गुरु के प्रेम में पड़ते हैं तो हमारी ऊर्जा उर्ध्वगामी होने लगती है।

अब इंद्रियां भीतर की ओर मुड़ने लगतीं हैं, हमारा उर्ध्वगमन शुरू हुआ तो इंद्रियों का अंतर्गमन शुरू हो गया। और जब ये इंद्रियां भीतर की ओर मुड़ती हैं तो जो कान बाहर के संगीत का आनंद ले रहे थे अब यही कान अपने भीतर के नाद का आनंद लेने लगते हैं। ये आंखें जो बाहर के रूप में उलझीं हुई थीं ये अपने भीतर के नूर को देखने लगतीं हैं, निराकार स्वरूप को देखने लगतीं हैं। ये जीभ जो बाहर का स्वाद ले रही थी अब यह भीतर जो एक स्वाद दिव्य स्वाद है उसका आनंद लेने लगती है, जिसको जानकर संतों ने कहा अन्नं ब्रह्म। गंधों की गंध भीतर मौजूद है। तो सब कुछ मौजूद है।

लेकिन दमन से बात नहीं बनेगी। हम अगर सोचें कि इंद्रियों को परेशान करें आंख बंद कर लें, कान को बंद कर लें, नाक को बंद कर लें, हर तरीके से दमन में चले जाओ तो बात नहीं बनेगी। ये जो मन है ये आनंद उठाना चाहता है इंद्रियों के माध्यम से, जब इसे पता चल जाएगा कि यह आनंद हमारे भीतर ही मौजूद है तो निश्चित रूप से यह सहयोग करता है इंद्रियों को भीतर लाने में और इंद्रियां भीतर ऐसी रसमग्न हो जाती है कि बाहर का रस फीका पड़ जाता है। जो इंद्रियां वश में नहीं थीं अब वश में हो जाती हैं। जब चाहे आंख बंद कर लो – 'दिल में बसा रखी है तस्वीरे यार, जब जरा गर्दन झुकाई देख लिया'। भीतर संगीत गूंज रहा है जब चाहा सुन लिया। भीतर हो रही है बरसात नाद और नूर की उसमें थोड़ी देर के लिए जाकर भींग गए। बाहर से भी आप जुड़े रहोगे। मेडिटेशन इन द मार्केट प्लेस, बाजार में रहकर भी ध्यानमग्न हो सकते हो, जैसे जल में कमल रहता है।

जे रौंग देखि ताइते आँखि
होये जाय रे बेभूलो।
दीपेर आलो देखे जैमोन।।

मन की आदत है कि जैसा रंग देखता है उसी रंग में रंग जाता है। इस मन को एक

नई दिशा देनी होगी, इस मन को दिखाना होगा परमात्मा का रंग जो कि गुरु की कृपा से दिखता है। हम अपने आप इस यात्रा को पूरी नहीं कर सकते, गुरु की कृपा से ही यह मार्ग संभव है, गुरु की मदद से ही यह अंतर्यात्रा होती है। आइए सुनते हैं परमगुरु ओशो क्या कहते हैं–

'जो नहीं है, उसे निर्बल मत जानना। जो नहीं है, उसमें भी बड़ा बल है। अन्यथा, मरु–मरीचिकाएं मनुष्य को आकर्षित न करतीं और स्वप्नों पर भरोसा न आता, क्षितिज आमंत्रण न देता, स्वप्न सत्य मालूम न होते। जो नहीं है, वह भी बड़ा प्रबल है, और मन के लिए 'जो है' उससे भी ज्यादा प्रबल है। मन उसे देख ही नहीं पाता, 'जो है'। मन सदा उसका ही चिंतन करता है जो नहीं है, जिसका अभाव है। जो हाथ में नहीं है, मन उसका विचार करता है। जो हाथ में है, उसे तो मन भूल ही जाता है। मन के इस सूत्र को ठीक से समझ लेना जरूरी है, तो ही भक्ति–सूत्र समझ में आ सकेंगे। क्योंकि मन के विपरीत जो गया, वही भक्ति को उपलब्ध हुआ। मन के साथ जो चला, वह कभी भगवान तक न पहुंच सकेगा।

भगवान यानी 'जो है', भक्ति यानी 'जो है', उसे देखने की कला। लेकिन 'जो है', वह हमें दिखाई क्यों नहीं पड़ता? 'जो है' वह तो हमें सहज ही दिखाई पड़ना चाहिए। 'जो है' उसे खोजने की जरूरत ही क्यों हो? 'जो है' उसे हम भूले ही क्यों, उसे हम भूले ही क्यों, उसे हम भूले ही कैसे? 'जो है' उसे हमने खोया कैसे? 'जो है' उसे खोया कैसे जा सकता है?

इसलिए पहली बात समझ लेनी जरूरी हैः मन का नियम। मन उसी को जानता है जो नहीं है। तुम्हारे पास अगर दस हजार रुपये हैं तो उन हजार रुपयों को मन भूल जाता है। मन उन दस लाख रुपयों का चिंतन करता है जो होने चाहिए, पर हैं नहीं। मन अभाव का चिंतन करता है। जो पत्नी तुम्हें उपलब्ध है मन उसे भूल जाता है। जो स्त्री उपलब्ध नहीं है, मन उसकी कल्पनाएं करता है, योजनाएं बनाता है। तुम्हें जो मिला है, मन उसे देखता ही नहीं; मन उसी पर नजर रखता है, जो मिला नहीं है। हाथ की असलियत मन को नहीं भाती, स्वप्न के आभास भाते हैं। मन स्वप्न के भोजन पर जीता है। मन जीता ही स्वप्न के सहारे है।

जब भी तुम आंख बंद करोगे, भीतर सपनों का जाल पाओगे, चलते ही रहते हैं,

रुकते ही नहीं। तुम आंख खोले काम में भी लगे हो, तब भी भीतर उनका सिलसिला जारी रहता है; तब भी पर्त दर पर्त सपने भीतर घने होने रहते हैं। तुम देखो या न देखो, लेकिन मन सपने बुनता रहता है। मन का सपनों का ताना–बाना क्षणभर को रुकता नहीं। उसी सपने के जाल का नाम माया है। उसी सपने के जाल में उलझे तुम परेशान और पीड़ित हो। जो नहीं है उसने तुम्हें अटकाया है। जो नहीं है उसने तुम्हें भरमाया है। जो नहीं है उसने तुम्हारी आंखें बंद कर दी हैं; और जो है उसे देखना मुश्किल हो गया है।

हम किस लिए इस जग में आए थे और क्या करते रहे। लालन कहते हैं कि जैसे पूजा आहुति के लिए घी तैयार किया जाए और वह कुत्ता खा जाए ऐसा ही हमारा जीवन चला जाता है। यह जीवनरूप अवसर यज्ञ रूपी घी के समान है, ये जीवन की पूंजी यज्ञ के घी के समान है, इस घी रूपी जीवन को अंतर्यज्ञ के लिए बचाना है, अपने कामनाओं को भस्मीभूत करना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और द्वेष इन सबको स्वाहा करना है। तो इस अंतर्यज्ञ के लिए यह जीवन मिलता है और हम कहां–कहां इसको बाहर व्यतीत कर देते हैं और धीरे–धीरे मौत आ जाती है। हम जो भी बाहर कमाते हैं वह सब मौत के साथ चली जाती है। और जो असली कमाई रहती है जो कि बाहर नहीं की जाती है, जो साथ जाती है उसके लिए हमारे पास समय ही नहीं रहता। ये अवसर ऐसे ही चूक जाते हैं। जिसके लिए मलूक दास जी कहते हैं–

राम कहो राम कहो राम कहो बावरे,
अवसर न चूक भोंदू पायो भला दांव रे।

(प्रवचन - 15)

जारे देखते चाय मोर पागोल मोन
ओ... खूँजे पेलाम ना कौखोनो।
होलो तार लागि मोन उचाटौन
कान्दे शौदाई दूई नौयोन।।
जार लागि कूल छाड़िलाम बाहिर होलाम,
आमार एई रूप–जोउबौन शोंपियाछिंलाम
आमि शूख छेड़े दूक्खो माथाय निलाम
जींबौने हौंबे कि तार दौरोशौन।।
जेदिन मिलबे एशे मोनेर मौतो रौतोन
तारे पेते दिबो ह्रदौय शिंहाशौन।।
पौराताम गौलाय माला मोनेर मौतो
आमि पूजा कोरतेम तार चौरोन।।
खूँजे जींबोनभोर पेलेम नाको आर
रोइलो भोधूशूदौनेर हाहाकार।।
जेदिन भेंगे जाबे भौबेर बाजार
ए दीन राजेनेर दिओ शौरोन।।

बाउल गीतों में जो भजनों का संग्रह है उनमें कुछ भजन ऐसे हैं जो मिलन के पूर्व, उपलब्ध होने के पूर्व फकीरों ने गाए हैं और कुछ उपलब्ध होने के बाद, मिलन के बाद। अर्थात प्रभु मिलन के पूर्व और पश्चात दोनों गीतों का संग्रह है। लेकिन एक संत ही बता सकता है कि कौनसे गीत मिलन के पूर्व के हैं और कौनसे गीत मिलन के बाद के हैं।

जारे देखते चाय मोर पागोल मोन
ओ... खूँजे पेलाम ना कौखोनो।
होलो तार लागि मोन उचाटौन
कान्दे शौदाई दूई नौयोन।।

अनुवादः मेरा पागल मन सदा उसे देखने को तरस रहा है, तड़प रहा है। उसके विरह में दो नयन सदा झरते हैं फिर भी परमात्मा को नहीं मिल पा रही हूँ।

सदा ही ये दो नयन रोते रहते हैं और प्रभु को देखना चाहते हैं। ये मन पागल है प्रभु को देखने के लिए। मन पागल इसलिए है कि उसे देखना चाहता है जो द्रष्टा है। द्रष्टा को दृश्य बनाना चाहता है तो कैसे दर्शन होंगे। इसलिए वह सदा ही विरह में रहेगा। हम सब भी सदा विरह में हैं। विरह क्या है? हमें अपनी जड़ें भूल गई हैं, परमात्मा से जो हमारा संबंध है वह टूट

गया है, हमें अपना पता भूल गया है, अपनी मूल ही भूल गई है, अपने उद्‌गम का विस्मरण हो गया है। जो हमारी सांसों की सांस है उसे विस्मृत करके हम जी रहे हैं। जहां हमें आनंद मिलेगा उसकी तरफ हमारी पीठ हो गई है और इसीलिए हम सदा दुखी हैं और विरह में हैं।

एक भक्त या साधक भी विरह में है। जब एक भक्त या साधक विरह में है तो वह कहता है–

तेरी तस्वीर बनाई थी आंखों ने
अश्कों ने मिटा दी होगी
अश्क इतने बहे कि तेरी तस्वीर ही गुम हो गई उसमें।

एक संत भी विरह में है और संत क्या कहता है–

दिल में बसा रखी है तस्वीरे यार,
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।

संत भी विरह में है लेकिन उसे पता है कि जब जरा गर्दन झुकाई देख लिया। दूरी नहीं है फिर भी विरह में है। कारण क्या है? संत का मिलन समाधि में होता है और जब मिलन होता है तो मिलने वाला उसमें खो जाता है। जैसे लगता है कि गगन और धरती का मिलन हो रहा है लेकिन गगन और धरती मिल नहीं सकते। नदी और सागर का मिलन होता है लेकिन जब नदी और सागर का मिलन हो गया तो नदी भी सागर हो गई, अब अगर नदी अपने को अलग करना चाहे और बोले कि मैं तो नदी हूं, मैं सागर नहीं हूं तो ये गलत बात है। अब तो वह सागर ही हो गई इसलिए वह सदा ही विरह में रहेगी। हर व्यक्ति जो परमात्मा की याद में रहता है वह सदा ही पाता है कि वह विरह में है। जैसे–जैसे मिलन की प्रगाढ़ता होती है विरह भी उतना ही गहरा होता जाता है।

कबीर साहब कहते हैं–

तलफै बिन बालम मोरा जिया।
दिन नहिं चैन, रैन नहिं निंदिया,
तलफ तलफ के भोर किया।
तन मन मोर रहट अस डोलै,
सूनी सेज पर जनम छिया।
नैन थकित भये, पंथ न सूझै,
साईं बेदरदी सुधि न लिया।
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
हरो पीर दुख जोर किया।।

हे प्रभु मेरी पीर हर लो जो विरह की है, इसे तो तुम ही हर सकते हो।

जार लागि कूल छाड़िलाम बाहिर होलाम,

आमार एई रूप–जोउबौन शोंपियाछिंलाम

आमि शूख छेड़े दूक्खो माथाय निलाम

जीबौने हौंबे कि तार दौरोशौन।।

अनुवादः जिस कारण से मैंने अपने कुल को त्याग दिया, अपना रूप–यौवन सब उसी के नाम को सौंप दिया, समस्त सुखों को त्याग कर भी दर–दर भटक रही हूँ किंतु उस परमात्मा के दर्शन से वंचित हूँ।

इस जीवन में कैसे दर्शन होंगे? सारा संसार छोड़कर, सारे सुख छोड़कर दुख में जी रहीं हूं, दुख को अपने सिर पर ले लिया फिर भी उसके दर्शन नहीं हुए। कौन सा दिन वह आएगा? एक साधक विरह में शिकायत कर रहा है कि कब तेरे दर्शन होंगे। और एक संत भी विरह में आंसू बहा रहा है लेकिन वह आंसू अहोभाव के हैं, वे आंसू आनंद के हैं, उसका विरह आनंद बन गया है और जिस भक्त का अभी मिलन नहीं हुआ है उसका विरह अभी दुख में है। एक विरह दुख में है और एक विरह आनंद में है लेकिन हैं सभी विरह में।

जेदिन मिलबे एशे मोनेर मौतो रौतोन

तारे पेते दिबो हृदौय शिंहाशौन।।

पौराताम गौलाय माला मोनेर मौतो

आमि पूजा कोरतेम तार चौरोन।।

अनुवादः जिस दिन उस राम–रतन को पा जाऊँगी, अपना हृदय सिंहासन सौंप दूँगी और उसके गले में माला पहनाकर उसकी पूजा करूँगी। लेकिन हाय! ऐसा कब होगा?

जिस दिन वह परमात्मा मिलेगा अपने हृदय का सिंहासन हम उसे सौंप देंगे। वास्तविकता तो यह है कि जिस दिन हम अपने हृदय का सिंहासन सौंप देते हैं उसी दिन ब्रह्म् आकर विराजमान हो जाता है, उस दिन अपने मन की माला हम उसे पहना देते हैं, ये जो मन है उसके चरणों में हीं लग जाएगा। इस हृदय में या तो ब्रह्म् रह सकता है या हमारा अहम् रह सकता है। जिस दिन इस हृदय से अहम् हटता है, अहंकार जाता है, ब्रह्म् आकर विराजमान हो जाता है। आइए सुनते हैं ओशो क्या कहते हैं विरह के ऊपर–

'जैसे कोई सफेद दीवाल पर सफेद खड़िया से लिख दे, तो पढ़ना मुश्किल होगा। इसीलिए तो स्कूल में काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लिखते हैं। पृष्ठभूमि विपरीत चाहिए, तो चीजें उभर कर दिखाई पड़ती हैं। गरीब देशों में जो एक तरह का संतोष दिखाई पड़ता है, वह झूठा संतोष है, उसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। लेकिन तुम्हारे अहंकार को भी तृप्ति मिलती है। तुम्हारे साधु–महात्मा कहते हैं कि तुम संतुष्ट हो, क्योंकि तुम धार्मिक हो। तुम्हारा अहंकार भी प्रसन्न होता है, प्रफुल्लित होता है। पर यह सरासर झूठ है।

अहंकार जीता ही झूठों के आधार पर है; झूठ अहंकार का भोजन है। सचाई कुछ और है। तुम्हारे साधु–महात्मा कहते हैं कि देखो पश्चिम की कैसी दुर्गति है! वे तुम्हें समझाते हैं कि दुर्गति इसलिए हो रही है पश्चिम की क्योंकि पश्चिम नास्तिक है, क्योंकि पश्चिम ईश्वर को नहीं मानता। यह बात भी झूठ है। पश्चिम की दुर्गति इसलिए दिखाई पड़ रही है, क्योंकि पश्चिम में धन है, सुविधा है, संपन्नता है। संपन्नता के ढेर...तो भीतर की विपन्नता बहुत खलने लगती है। इतना सब बाहर है और भीतर कुछ भी नहीं! तो प्राण रोते हैं। प्राण चाहते हैं, भीतर भी भराव हो। तो आदमी दौड़ता है। धन से नहीं भरे तो पद से भरे। तो हो जाऊं प्रधान मंत्री, कि राष्ट्रपति! पद से न भरता हो तो शायद त्याग से भरे। तो त्याग दूं पद, तपश्चर्या करूं। व्रत–उपवास, योग, हवन–यज्ञ करूं। मगर नहीं भरता।

भीतर का खालीपन ऐसे भरता ही नहीं। भीतर का खालीपन तो सिर्फ एक ही तरह से भरता है कि वह प्यारा तुम्हारे भीतर उतर आए। वही उतर सकता है तुम्हारे भीतर। परमात्मा के अतिरिक्त तुम्हारे भीतर किसी का कोई प्रवेश नहीं हो सकता। तुम्हारी प्रेयसी भी वहां नहीं जा सकती। तुम्हारा पति, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बच्चे, कोई वहां नहीं जा सकते। सिर्फ एक परमात्मा की वहां गति है। सिर्फ वही तुम्हारे अंतरतम में विराजमान हो सकता है। वह भरे तो तुम भरो। वह आए तो तुम भरो। वह जब तक नहीं तब तक तुम खाली हो। और खाली हो तो रोओगे। खाली हो तो दुखी होओगे। खाली हो तो नरक में जीओगे। रिक्तता ही तो नरक है।

क्या परमात्मा सुख विरोधी है? लोग कहते हैं कि मैंने ये तप किया, ऐसी योग–साधना की, कांटों पर खड़ा हुआ इतने सारे दुख जीवन में भोगे लेकिन परमात्मा सुख देता ही नहीं। परमात्मा सुख विरोधी नहीं है। हम जीवन में दुख की गठरी को इकट्ठा करते जाएं, साधना को बढ़ाते जाएं, उपवास रखें, दुखी रहें उसकी याद में इससे परमात्मा नहीं मिलने वाला है। वास्तविकता तो यह है कि जिस दिन हम आनंद में जीते हैं, जिस दिन हम आनंदित हो जाते हैं उसी आनंद में परमात्मा बरस जाता है। परमात्मा का मिलन आनंद की दशा में होता है। ये बात ठीक है कि मिलन के लिए विरह की भूमिका बहुत जरूरी है, जैसे धरती जब तपती है तभी बरसात होती है ऐसे ही विरह में जब ह्रदय रोता है तो परमात्मा से मिलन हो जाता है।

मोकों कहाँ ढूढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया–कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरते मिलिहाँ, पलभर की तलास में

कहैं कबीर सुनो भाई साधाो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।

बाहर नहीं जाना होगा, न तो मैं बाहर मस्जिद में हूं, न काबे में हूं, न कैलाश में हूं। न ही किसी क्रिया कर्म में हूं, न ही किसी योग में हूं, न ही किसी वैराग्य में हूं। अगर किसी को वास्तविक खोज है तो वह तुरंत मुझे महसूस कर सकता है, पल भर की तलाश में कोई भी मुझे पा सकता है। जो सांस चल रही है उसके बीच में जो गैप है उस गैप में अगर हमें ठहरना आ जाए तो परमात्मा से मिलन हो जाएगा।

रुकूं तो मंजिलें ही मंजिलें हैं,
चलूं तो रास्ता कोई नहीं है,
दरीचा बेसदा कोई नहीं है।
दीन राजन आगे कहते हैं–
खूँज़े जींबोनभोर पेलेम नाको आर
रोइलो भोधूशूदौनेर हाहाकार।।
जेदिन भेंगे जाबे भौबेर बाजार
ए दीन राजेनेर दिओ शौरोन।।

अनुवादः उसे ढूँढते ढूँढते जीवन बीत गया लेकिन वो गोविंद अब तक न मिला। इसलिए दीन राजन कहते हैं– रे गोविंद अब तक तो तू नहीं मिला लेकिन जब संसार को छोड़ चलूँ तो मुझे अपनी शरण में ले लेना। बस इतनी कृपा मुझ पर करना।

जो जिंदगी भर तलाशते रहे, ध्यान में डूबने का प्रयास करते रहे और पूरी तरह नहीं डूब सके, उन्हें भी परमात्मा की शरण मिल जाती है मृत्यु की बेला में। जीवन के बाजार में, आपाधापी में, व्यस्तता में अंतर्यात्रा करना मुश्किल हो सकता है, किंतु ध्यानी साधक के लिए जब बाजार, संसार, परिवार, शरीर छूटने लगता है, तब अंतर्यात्रा बिल्कुल सहजता से हो जाती है। ओशो ने कहा है कि यदि जीवनकाल में ध्यान साधना बुद्धत्व की मंजिल तक न पहुंच पाए तो घबराना मत; बस, ध्यान में लगे रहना। मरते समय साधक को क्या स्मरण आएगा? जिसकी चेष्टा जिंदगी भर चलती रही वही तो याद आएगा। सारी ऊर्जा अंतर्गामी हो जाएगी। अंतिम समय में साधना सफल हो जाएगी, बुद्धत्व घट जाएगा।

धन्यवाद।

(प्रवचन - 16)

गुरु की महिमा कही न जाए...!

गुरुबोस्तु चिने ने ना।
औपारेर कान्डारी गुरु, ता बिने कूल केऊ पाबे ना।।
कि कार्जो कोरिबो बोले, ए भौबे आशियाछिले,
कि छार मायाय रो लि भूले, शे कौथा मोने पो लोना।।
हेलाय हेलाय दिन गैलो, मौहाकाले घिरे एलो
आर कौबे कि कोरबि बौलो, रौंग मौहोले पोड़ले हाना।
घौरे ऐखोन बोइछे पौबोन, होते पारे किछू शाधोन
सिराज साईं कौए औबोधा लालोन, एबार गैले आर हौबे ना।।

लालन फकीर के इस प्यारे गीत को आज हम लेंगे। गुरु के स्वरूप को जान ले मन, वे हीं तुझे संसार समुंद से पार लगायेंगे। गुरु के बिना ऐसा कोई भी सामर्थ्यवान नहीं जो संसार समुंद से पार लगाये। कौन से कार्य सिद्धि के लिए संसार में तू आया था इसे भूलकर भस्म–माया में खुद को लपेट लिया। अब महाकाल की बेला में गुरु हीं हैं जो अपना हाथ बढ़ाकर शिष्य को पार लगाते हैं। इस चला–चली की बेला में कुछ जतन कर ले ताकि साधन से उस रतन को तू पा सके। लालन कहते हैं कि मेरे गुरु मुझे चेता रहे हैं कि हे अबोध लालन, तूने व्यर्थ में बहुत समय बिताया लेकिन अबकी बार मत चूकना।

मनुष्य और परमात्मा के बीच की कड़ी है गुरु। संसार और संन्यास के बीच में जो कड़ी है, वह है गुरु। गुरु पुल की तरह होते हैं। जैसे नदी का एक किनारा और दूसरा किनारा सेतु के द्वारा मिल जाता है। वैसे ही अस्तित्व–सरिता का एक किनारा संसार है और दूसरा किनारा संन्यास है। गुरु दिखता तो है एक मनुष्य, एक व्यक्ति के जैसा, लेकिन है वह परमात्मा। निराकार गोविंद ही साकार बनकर आ गया है जिसका नाम गुरु है। उसकी देह बाहर से तो हमारी तरह ही दिखती है लेकिन भीतर उसके निरंकार गूंज रहा है। वह चैतन्य में निमज्जित है, वह महाशून्य में जी रहा है।

संत चरनदास जी कहते हैं–
पृथ्वी पर देही रहै, परमेसुर में प्रान।।

उसकी देह तो दिखती है हमारे जैसे ही चलती–फिरती, खाती–पीती लेकिन उसके प्राण सदा परमेश्वर में लीन होते हैं। गुरु के बिना इस संसार से पार पाना संभव ही नहीं है।

गुरुबोस्तु चिने ने ना।
औपारेर कान्डारी गुरु, ता बिने कूल केऊ पाबे ना।।

उसके बिना भवसागर से पार कोई नहीं हो सकता। गुरु की कृपा से ही बात बन सकती है। जीवन में तीन चीजें हैं जगाने के लिए– पहला जीवन अपने आप में, दूसरी मृत्यु,

तीसरा गुरु। जो समझदार हैं, सर्वाधिक संवेदनशील हैं वे जीवन से ही सीख जाते हैं। जीवन से ही जाग जाते हैं। जो थोड़े कम संवेदनशील हैं वे मृत्यु से चौंकते हैं, जाग्रत होते हैं। दुनिया में प्रतिदिन करीब दो लाख लोग मरते हैं। आसपास कितने लोगों की मृत्यु हो रही है! पृथ्वी एक विशाल मरघट है। अगर हमारे भीतर यह प्रश्न उठ जाए कि हमें भी यहां हमेशा नहीं रहना है, हमें भी यहां से जाना है तो प्राण कंपित हो जाएंगे। यहां से जाने की क्या तैयारी है? क्या वह चीज है जिसे हम पाकर हंसते-हंसते विदा हो सकते हैं।

जीवन के बाद, दूसरी जगाने वाली घटना है मृत्यु। अगर इससे भी कोई न सीखे तो फिर तीसरा उपाय है गुरु। संस्कृत में एक सूत्र है कि आचार्य मृत्यु के समान है। गुरु के सान्निध्य में हमारे अहंकार की मृत्यु हो जाती है।

तीन उपाय हैं आत्म-जागरण के- जीवन, मृत्यु और गुरु। लेकिन कुछ ऐसे मूढ़ हैं जो तीनों उपायों से नहीं सीख पाते। उनके लिए फिर कोई उपाय नहीं है।

बायजीद नाम का एक फकीर हुआ जिसका कोई गुरु नहीं था, जैसे ओशो के कोई गुरु नहीं थे। ये बिना गुरु के ही, मात्र जीवन के अनुभव से सीखे। बायजीद से किसी ने पूछा कि आपके गुरु कौन हैं? बायजीद हंसते हुए बोला कि मेरे तो कई गुरु हैं, मैं किस-किस के नाम लूं, सारा जीवन ही गुरु है। सभी मुझे सिखा रहे हैं।

एक बार बायजीद ने देखा कि एक बच्चा मोमबत्ती लिए चला जा रहा है। बायजीद ने उस बच्चे से पूछा कि यह दीपक तुम्हीं ने जलाया है न! बताओ, इसकी लौ कहां से आई, क्या तुम जानते हो?

बच्चा हंसा और कुछ नहीं बोला। उसने फूंक मारकर लौ को बुझा दिया, फिर बच्चे ने पूछा कि अब ये लौ कहां चली गई? आपके सामने ही गई है, बताइये। बायजीद तो चौंका और उस बच्चे के चरणों में गिर गया, इस तरह वह बच्चा मेरा गुरु हो गया। उसने मुझे जीवन के रहस्यमय होने के प्रति जाग्रत किया।

बायजीद ने बताया कि एक चोर भी मेरा गुरु हो गया। चोर से मैंने धैर्य का पाठ सीखा। कितने धीरज से वह रोज चोरी के लिए जाता है! कितनी प्रतीक्षा करता है, कितने संघर्षों से जूझते हुए वह प्रतिदिन नई आशा लेकर जाता है और कई बार असफल होता है। कभी दरबान जाग रहा है, कभी बिल्ली ने आहट कर दी, कई बाधाएं आती हैं। किसी दिन दरवाजा नहीं खुला। कभी तिजोड़ी का ताला... फिर भी वह रोज नए-नए उपाय करते हुए धैर्यपूर्वक जाता है धन चुराने के लिए।

बायजीद को लगा कि ये साधारण धन को पाने के लिए इतना बड़ा धैर्य रखता है और मुझे तो रामरतन धन पाना है, परमात्मा रूपी धन पाना है; अतः मुझे तो बहुत धैर्य की जरूरत है। इस तरह से बायजीद समझाता है कि मैंने चोर से धीरज का पाठ सीखा। फिर एक वेश्या से समभाव सीखा। वह लोगों के प्रति समभाव रखती है। कोई श्रेष्ठ है, कोई निकृष्ट; सुंदर या कुरूप है, ऐसा भाव उसके अंदर नहीं है। वह तो सबको ग्राहक के रूप में बराबर देखती है,

समदर्शिता मैंने उससे सीखी।

एक बार विवेकानंद को एक राजा ने अपने घर पर आमंत्रित किया। उनका खूब स्वागत–सत्कार किया। अब राजा तो राजा था! उसे पता ही नहीं था कि गुरु का सत्कार कैसे किया जाता है। उसने उस समय की जो नामी वेश्या थी उसे बुलाया और रात को सत्कार में नृत्य का आयोजन किया। जैसे ही विवेकानंद ने सुना कि उनके स्वागत के लिए वेश्या को बुलाया गया है, विवेकानंद तो नाराज हो गए कि संन्यासी के लिए वेश्या का नृत्य क्यों दिखाना चाहते हैं। बेचारी वेश्या ने भी किसी साधु का सत्कार नहीं किया था। उसने भी खूब–खूब तैयारी की थी, तरह–तरह के भजन तैयार किये थे। जब उसने सुना कि विवेकानंद जी ने आने से इंकार कर दिया तो उसने यह नरसी मेहता का यह प्रसिद्ध गीत गया–

प्रभु जी मेरे अवगुण चित न धरो, समदर्शी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो।

आगे इसमें भाव आता है कि एक लोहा बधिक के यहां है, कसाई के यहां है और दूसरा लोहा पूजास्थल पर है। लेकिन पारस पत्थर तो दोनों के संग समान रूप से व्यवहार करता है। पारस उन्हें छूता है तो दोनों सोना हो जाते हैं। गुरु भी पारस रूप होते हैं... आप कैसे भेद कर सकते हैं मनुष्य में?

विवेकानंद के ह्रदय में पश्चाताप हुआ और वे तुरंत उस गीत को सुनकर दौड़े आए और वेश्या से क्षमा मांगी। उनकी आंखों में आंसू थे। उसके बाद पूरे समारोह में उन्होंने अपना समय व्यतीत किया। इस तरह समदर्शिता का सबक स्वामी विवेकानंद ने उस वेश्या से सीखा।

जीवन की हर छोटी–बड़ी घटना हमें सिखाने के लिए है। सीखने की कला होनी चाहिए, फिर तो हर घटना हमारी गुरु बन जाती है। लाओत्सु सूखे पत्ते को गिरते हुए देखकर ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। आइए इस बारे में परमगुरु ओशो क्या कहते हैं सुनते हैं–

'तुम्हारे पास अपना दीया नहीं है लेकिन किसी का दीया जला है। रात अंधेरी है, अमावस है। जिसका दीया जला है उसके साथ तुम चार कदम चल लो तो तुम्हारा पथ भी प्रकाशित होता है। यही तो सदगुरु का सत्संग है। उनकी रोशनी में अगर तुम चल लो तो तुम्हारा भी पथ प्रकाशित हो जाता है। और न केवल यही कि तुम्हारा पथ प्रकाशित होता है, तुम्हें यह भी दिखाई पड़ता है कि यही संभावना मेरी भी है, ऐसा ही दीया मैं भी हूं। तुम्हें यह भी दिखाई पड़ता है कि जैसा आज मैं अंधेरा हूं, कल सदगुरु भी अंधेरा था। आज सदगुरु प्रकाशित हुआ है, कल मैं भी प्रकाशित हो सकता हूं। जो मेरा वर्तमान है वही तो कल सदगुरु का अतीत था। जो आज उसका वर्तमान है, कल मेरा भविष्य हो सकता है।

उड़ते हुए पक्षी को देखकर, जो पक्षी कभी न उड़ा हो उसके भी पंख फड़फड़ा उठते हैं। वृक्ष को खिलते हुए देखकर जो वृक्ष कभी न खिला हो उसके प्राणों में भी सुगबुगाहट शुरू हो जाती है। झरने को बहते देखकर सागर की तरफ जो सरोवर सदा अपने में बंद रहा हो उसके

भीतर भी एक व्याकुलता उठती है, एक विरह–वेदना उठती है, एक पुकार उठती है कि चलूं, बढ़ूं, कि मैं भी खोजूं। खोजूं उसे जिसे पाकर समग्र हो जाऊं। खोजूं उसे जिसे पाकर विराट हो जाऊं।

जिन्होंने पाया है उनके पास बैठकर भी पाने की प्रबल पुकार न उठे, प्यास न जगे– तो बड़े अभागे हो। क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं है। सत्य की तरफ जाने का सत्संग के अतिरिक्त और कोई द्वार ही नहीं है।

मेरे जीवन का विष अमृत
तुम न करोगे कौन करेगा!

मैं लोहा हूं त्याज्य तिरस्कृत
ओ, पारस क्या परस न दोगे
कौतूहल अंधा हो जाए
तो भी क्या तुम दरस न दोगे
मेरे अंतर मन का कल्मष
तुम न हरोगे कौन हरेगा!

चुभते शूल पगों में मेरे
किंतु निकलती आह तुम्हारी
दुःख मेरा पर हृदय तुम्हारा
तन मेरा पर छांह तुम्हारी
मेरे आंसू अपनी पलकों
तुम न भरोगे कौन भरेगा!

मेरे जलते मस्तक पर यूं
चू पड़ते हैं अश्रु तुम्हारे
रेगिस्तानी प्यास कि जैसे
गंगाजल से अधर पखारे
मेरे मरुस्थल पर करुणा–घन
तुम न झरोगे कौन झरेगा!
संघर्षों से टूट गिरूं मैं
उसके पहले बांह चाहिए
जीवन की दोपहरी में अब

प्रिय आंचल की छांह चाहिए
मेरा बोझ अपने कंधों
तुम न धरोगे कौन धरेगा!

दुख ने काफी धोया लेकिन
मन अब भी है कुछ-कुछ मैला
फन काढ़े रहता है मुझमें
अभी अहम् का नाग विषैला
मेरी कुंठा को विवेक से
तुम न वरोगे कौन वरेगा!

सदगुरु संस्पर्श है अज्ञात का। सदगुरु साक्षात है अज्ञात का। दृश्य है अदृश्य के लिए। परिचित है अपरिचित का। दूर-दूर की ध्वनि है लेकिन तुम्हारे कानों के पास, तुम्हारे हृदय के पास गूंजती हुई। लेकिन तुम्हारे विरोध में कोई मुक्ति संभव नहीं है, तुम्हारा सहयोग चाहिए।'

जो खुद पार उठ गया है वही दूसरों को दलदल से खींच सकता है, जो खुद ही दलदल में फंसा है वह दूसरों का सहारा कैसे बन सकता है? इस जगत में जो खुद ही दुख में जी रहे हैं, जिन्हें आनंदित जीवन के सूत्रों का पता नहीं है, वे उपाय बता रहे हैं दूसरों को, सुखी होने की शिक्षा दे रहे हैं! कबीर ने मजाक में कहा है-

अंधा-अंधा ठेलिया, दोऊ कूप पड़ंत।

लेकिन गुरु इस जीवन को जिया है। जीवन के सुखों और दुखों का अनुभव किया है। फिर उनसे पार उठ गया है। इसलिए जो जानता है पार उठने की विधि, वही दूसरों को पार करा सकता है। संत पलटू दास जी कहते हैं-

अजंहु चेत गंवार।

पलटू जब कहते हैं गंवार तो इसका मतलब ऐसा नहीं है कि अनपढ़ की बात कर रहे हैं, गंवार का मतलब जो गंवा रहा है। जिसको शंकराचार्य कह रहे हैं मूढ़, जो जागता नहीं है, जो मूर्च्छा में जीता है, जो सोचता है कि यहां सदा रहने के लिए आया है। इनको पलटू कह रहे हैं अजंहु चेत गंवार।

लालन फकीर कहते हैं कि इस चला-चली की बेला में कुछ जतन कर ले ताकि साधन से उस रतन को तू पा सके। मेरे गुरु मुझे चेता रहे हैं कि हे अबोध लालन, तूने व्यर्थ में बहुत समय बिताया लेकिन अबकी बार मत चूकना। अजहुं चेत गंवार।

याद रखना, जब जागो तभी सवेरा। अब जागो भी!

(प्रवचन – 17)

तुझमें ही है छिपा खुदा

आकार कि निराकार साँई रब्बाना।
आहाद आर आहामौदेर बिचार होले जाये जाना।।
आहामौद नामे देखीं, मिम हौरोफ लेखे नोबी
मिम गैले आहाद बाकी, आहामौद नाम थाके ना।।
खूँजिते बान्दार देहे, खोदा शे लुकाईये
आहादे मिम बौशाये, आहामौद नाम होलो शे ना।।
एई पौथेर और्थो धूड़े, कार बा ज्ञान बोशबे धौड़े
केउ बोलबे लालोन भेड़े, फाकड़ा शोई बोझे ना।।

बाउल फकीर पूछते हैं– परमात्मा साकार है या निराकार? या रब मैं जान नहीं पा रहा। अहमद नाम में मीम मात्रा लगाकर नबी अहमद बना देते है और मीम हट जाने से अहमद नाम ही नहीं रहता, केवल एक एवं अद्वितीय ईश्वर ही सर्वत्र है। अहमद मोहम्मद का ही नाम है लेकिन मीम मात्रा हटने पर केवल एक एवं अद्वितीय ईश्वर ही शेष रहता है। रे बंदे! तुझ में ही तो वह खुदा बसता है। अहद नाम में ही वो तुझे मिलेंगे। अहमद तो केवल माध्यम है। इस पद का अर्थ लगाकर तू ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए तो तुझे लालन जैसा फकीर और फक्कड़ बनना होगा तभी तू एक ईश्वर के नाम को जान पायेगा। अहद अर्थात एक एवं अद्वितीय ईश्वर के नाम को जाने बिना अहमद नाम को भी तू न जान पायेगा।

परमात्मा साकार है या निराकार?
आकार कि निराकार साँई रब्बाना।
आहाद आर आहामौदेर बिचार होले जाये जाना।।

आधुनिक विज्ञान ने पदार्थ को खोजते–खोजते यह परिणाम पाया कि पदार्थ है ही नहीं, ऊर्जा ही ऊर्जा है और ऊर्जा का संघनित रूप पदार्थ है। निराकार ऊर्जा का संघनित रूप, ठोस रूप पदार्थ है। दोनों अलग–अलग नहीं हैं, एक ही अस्तित्व के दो ढंग हैं। जब अस्तित्व अभिव्यक्त होता है तो आकार के माध्यम से होता है और जब अन्अभिव्यक्त है तब वह निराकार है। जैसे हमारी चेतना; चेतना हमारी दिखती नहीं है लेकिन शरीर दिखता है। ये चेतना जब अभिव्यक्त हुई तो इसने रूप दिया शरीर का। ऐसे ही हमारी भावना है। भावना दिखती तो नहीं है लेकिन जब अभिव्यक्त होती है तो कर्म में आ जाती है। जैसे हम किसी के प्रति प्रेमपूर्ण होते हैं तो निश्चितरूप से हम उसके लिए कुछ करना चाहेंगे। हमारा भाव ही बता देगा कि हम किसी के प्रति प्रेमपूर्ण हैं। ये भावना कर्म के द्वारा अभिव्यक्त हो

गई। ऐसे ही विचार दिखते नहीं हैं लेकिन जब हम बोलते हैं तो हमारे विचार समझ में आने लगते हैं। हमारे विचारों ने अब रूप ले लिया तो वह वाणी बन गए। ऐसे ही अस्तित्व एक ही है लेकिन एक है अन्अभिव्यक्त और दूसरा है अभिव्यक्त।

आकार कि निराकार साँई रब्बाना।

आहाद आर आहामौदेर बिचार होले जाये जाना।।

अहमद नाम में मीम मात्रा हटा दो अहद है, म लगा दो तो अहमद हो जाए और अहमद मोहम्मद साहब का नाम है। ऐसे ही गुरु जब रूप लेता है तो गोविंद के रूप में आता है और पैगम्बर के रूप में आता है, अवतार के रूप में आता है। कभी कृष्ण बनकर आता है, कभी मोहम्मद बनकर आता है, कभी राम बनकर आता है। अब ये अस्तित्व रूप लेकर हम तक आया। ऐसे ही गुरु और गोविंद एक ही हैं। गोविंद ने रूप ले लिया और गुरु हो गया, गुरु जब निराकार हो गया तो गोविंद हो गया। गुरु का निराकार स्वरूप गोविंद है और गोविंद का आकार स्वरूप गुरु है। परमात्मा कोई आसमान पर बैठा हुआ व्यक्ति नहीं है, कोई रूप नहीं है। निश्चित रूप से वह सब रूपों में अभिव्यक्त है। नदियां बहती हैं तो उस बहाव के साथ परमात्मा बह रहा है, फूल खिलते हैं तो परमात्मा हीं खिल रहा है, बच्चे हंसते हैं तो परमात्मा हंस रहा है, हरियाली में परमात्मा हरियाली बनकर अभिव्यक्त हुआ है। ये आप पर निर्भर करता है कि आप किस रूप में महसूस करते हैं किसको।

प्राचीन हिन्दू परंपरा में सबके नाम परमात्मा के नामों पर रखे जाते थे। राम, कृष्ण, गोपाल सब अपने बच्चों के ऐसे ही नाम रखते थे। एक पुस्तक है विष्णु सहस्त्रनाम, उसमें परमात्मा के सौ नाम हैं। ये सभी नाम परमात्मा की याद दिलाने के लिए हैं। ऐसे ही सूफियों में एक पुस्तक है जिसमें कि अल्लाह के सौ नाम हैं। उसमें से निन्नान्वे नाम हैं, एक नाम नहीं दिखता क्यों, क्योंकि उस नाम को बोला नहीं जाता, उस नाम को सुना जाता है, यहीं इशारा है अहमद और अहद का। जब म हट जाता है तो अहद बन जाता है, वह अद्वितीय ईश्वर, वह ओंकार स्वरूप ईश्वर शेष रह जाता है। ऐसे परमात्मा को कहां पाओगे? अंतर्यात्रा करके पाओगे। बाहर हिमालय में, गुफाओं में, तीर्थ में जाकर, काबा में जाकर नहीं मिलता ऐसा परमात्मा! अपने भीतर डूबकर, अपने भीतर लीन होकर ऐसे ईश्वर की अनुभूति की जा सकती है।

खूँजिते बान्दार देहे, खोदा शे लुकाईये

आहादे मिम बौशाये, आहामौद नाम होलो शे ना।।

रे बंदे! तुझ में ही तो वह खुदा छिपा हुआ है। खुदा क्या है? जिससे हम आते हैं और जहां हम चले जाते हैं ऐसा खुदा, ऐसा परमात्मा है। इसे कोई नास्तिक भी इंकार नहीं कर सकता। जैसे कि सागर है। अब सागर है तो लहरें उठेंगी, जहां से लहरें उठी हैं वहीं

विलीन भी हो जाएंगी। जब लहरें नहीं थीं तब भी कुछ था और जब लहरें उठीं तब भी कुछ है, जब हम नहीं थे तब भी कुछ था, जब हम नहीं होंगे तब भी कुछ होगा। वह जो हमारे नहीं होने पर था और फिर जब नहीं होंगे तब भी होगा और अभी हम हैं तब भी है, उस सागर का नाम परमात्मा है। जहां से लहरें उठ रही हैं, जहां पर लहरें गिर रही हैं, जहां से फूल खिल रहे हैं और विलीन हो रहे हैं ऐसे परमात्मा को कह लो, द ओरिजनल सोर्स; वह जो मूल आधार है, वह अस्तित्व का मूल आधार है जहां से हमारा आना-जाना हो रहा है। इस परमात्मा की बात बाउल फकीर कर रहे हैं, इसी परमात्मा की बात संत लालनदास जी कर रहे हैं।

आकार की निराकार सांई रब्बाना।

आदमी से आदमी पैदा होता है, एक आम के बीज से आम पैदा होता है, चिड़िया से चिड़िया पैदा होती है, ईश्वर से सब पैदा होता है। ईश्वर का आकार नहीं हो सकता। अगर ईश्वर का आकार होगा तब तो एक ही आकार पैदा होगा, जिससे कि सभी आकार पैदा हो रहे हैं वह साकार कैसे हो सकता है, वह तो निराकार ही होगा। पशुओं से पशु पैदा होंगे, आदमी से आदमी पैदा होंगे, बीज से पेड़ पेदा होंगे, रूप से रूप ही पैदा होगा लेकिन जिससे सारा रूप पैदा हो रहा है वह अरूप है, वह निराकार है।

एक बार परमात्मा ने एक मीटिंग का आयोजन किया। वहां सब देवताओं को बुलाया गया। सब लोग अपनी-अपनी प्रार्थना सुनाने लगे। परमात्मा बहुत परेशान था। सब लोग विपरीत-विपरीत बातों की मांग करते थे। परमात्मा ने देवताओं से कहा कि मैं एक आदमी से बहुत परेशान हूं। देवताओं ने सलाह दी परमात्मा को कि आप ऐसा करो कि आदमी के हृदय में ही रहने लगो जहां वह कभी नहीं जाता। हर जगह वह तुम्हें ढूंढ़ेगा लेकिन वहां कभी नहीं जाएगा। तब से परमात्मा ने उन देवताओं की बात मान ली और हर आदमी के हृदय में परमात्मा विराजमान हो गया। परमात्मा को मनुष्य हर जगह खोजता है, बस अपने अंतर्तम में नहीं खोजता, अपने हृदय में नहीं खोजता जहां परमात्मा प्रतिपल दस्तक दे रहा है।

हरि गीत गा रहा है क्या याद है,
बंसी बजा रहा है क्या याद है।

प्रतिपल उसकी धुन भीतर गूंज ही रही है, प्रतिपल उसकी पुकार भीतर उठ रही है लेकिन हम संसार में बाहर इतने व्यस्त हैं कि अपने भीतर देख ही नहीं पाते।

मोको कहां ढूंढ़े रे बंदे मैं तो तेरे पास में,
एई पौथेर औथों धूड़े, कार बा ज्ञान बोशबे धौड़े
केउ बोलबे लालोन भेड़े, फाकड़ा शोई बोझे ना।।

इस पद का अर्थ लगाकर ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। सच बात तो यह है कि किसी भी

पद को पढ़कर, किसी भी प्रवचन को सुनकर शास्त्रों से ज्ञान प्राप्त नहीं होता। ज्ञान के लिए अनुभव करना होगा। लालन फकीर कह रहे हैं कि तुम्हें भी हमारी तरह फकीर बनना होगा, फक्कड़ बनना होगा। कबीर कहते हैं–

जो घर बारे आपना चले हमारे साथ।

जो फक्कड़ बनने के लिए तैयार है, जो सबकुछ खोने के लिए तैयार है, जो मिटने के लिए तैयार हो उसे हीं इन बातों का अर्थ समझ में आएगा। बौद्धिक समझ काम नहीं आएगी। जैसे हमारा मन विश्लेषक है इसलिए बौद्धिक समझ हमें काम नहीं दे सकती परमात्मा के संबंध में। जैसे अगर हम दूर वाले चश्मे से पास की चीज को देखें तो कुछ दिखाई नहीं देता ऐसे ही मन दूरबीन की तरह है, वह दूर की चीजों को देखता है, बाहर की चीजों को देखता है लेकिन भीतर का अनुभव मन नहीं करता, परमात्मा को इसीलिए नहीं देख पाता। परमात्मा को देखने के लिए हमें मन के पार जाना पड़ेगा, बौद्धिक समझ से परे जाना पड़ेगा, बुद्धि से परे है परमात्मा। तो परमात्मा को यदि खोजना है तो असली प्रश्न यह होगा कि मेरी आंख में कौन सा पर्दा है जिसके कारण परमात्मा दिखाई नहीं दे रहा है और वह पर्दा कैसे हटे। जिस दिन यह पर्दा हट जाता है परमात्मा तो सर्वत्र मौजूद हीं है। चरनदास जी कहते हैं–

इन नैनन निराकार लहा।
कहन सुनन की कौन पतीजै, जान अजान ह्वै सहज रहा।।
जित देखौ तित अलख निरंजन, अमर अडोल अबोल महा।
जोति जगत बिच झिलमिल झलकै, अगम अगोर पूरि रहा।।
अलख लखा जब बेगम हूआ, भर्म कोट जब तुर्त डहा।
सर्ब मई सब ऊपर राजै, सुन्न सरूपी ठोस ठहा।।
जीवन मुत्तफ भया मन मेरा, निर्भय निर्गुन ज्ञान महा।

इन नैनों से निराकार को देखो, कहने–सुनने बस से बात समझ में नहीं आएगी। सहज हो जाओ। जिस दिन हम सहज हो जाते हैं, प्रतिक्रिया शून्य हो जाते हैं और अपने भीतर जाते हैं तो उस निराकार के दर्शन हो जाते हैं, उस निराकार की अनुभूति हो जाती है। आएं परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'पूजा का अर्थ होता हैः परमात्मा को प्रतिस्थापित करना; एक पत्थर की मूर्ति है या मिट्टी की मूर्ति है, परमात्मा को उसमें आमंत्रित करना; परमात्मा को कहना कि 'इसमें आओ और विराजो– क्योंकि तुम हो निराकारः कहां तुम्हारी आरती उतारुं? हाथ मेरे छोटे हैं, तुम छोटे बनो! तुम हो विराटः कहां धूप–दीप जलाऊं? मैं छोटा हूं, सीमित हूं, तुम मेरी सीमा के भीतर आओ! तुम्हारा ओर–छोर नहींः कहां नाचूं? किसके सामने गीत

गाऊं? तुम इस मूर्ति में बैठो!'

पूजा का अर्थ है: परमात्मा की प्रतिस्थापना सीमा में, आमंत्रण– इसलिए पूजा का प्रारंभ उसके बुलाने से है।

अंगरेजी में शब्द है 'गाड' भगवान के लिए। वह शब्द बड़ा अनूठा है। उसका मूल अर्थ है– जिस मूल धातू से वह पैदा हुआ है, भाषाशास्त्री कहते हैं, उस मूल धातु का अर्थ है– 'जिसको बुलाया जाता है।' बस इतना ही अर्थ है जिसको बुलाया जाता है, जिसको पुकारा जाता है– वही भगवान।

दूसरा, जिसने कभी पूजा का रहस्य नहीं जाना, देखेगा तुम्हें बैठे पत्थर की मूर्ति के सामने, समझेगा: 'नासमझ हो! क्या कर रहे हो?' उसे पता नहीं कि पत्थर की मूर्ति अब पत्थर की नहीं– मृण्मय चिन्मय हो गया है! क्योंकि भक्त ने पुकारा है! भक्त ने अपनी विवशता जाहिर कर दी है। उसने कह दिया है कि 'मैं मजबूर हूं। तुम जैसा विराट मैं न हो सकूंगा, तुम कृपा करो, तुम तो हो सकते हो मेरे जैसे छोटे! मेरी अड़चनें हैं। मेरी शक्ति नहीं इतनी बड़ी के तुम जैसा विराट हो सकूं। दया करो! तुम ही मुझ जैसे छोटे हो जाओ ताकि थोड़ा संवाद हो सके, थोड़ी गुफ्तगू हो सके, दो बातें हो सकें। मैं फूल चढ़ा सकूं, आरती उतार सकूं, नाच लूं: तुम्हारा कुछ न बिगड़ेगा। सभी रूप तुम्हारे हैं, यह एक और रूप तुम्हारा सही! मुझे बहुत कुछ मिल जाएगा, तुम्हारा कुछ खोएगा नहीं।'

भक्त की आंख से देखना मूर्ति को, नहीं तो तुम मूर्ति को न देख पाओगे; तुम्हें पत्थर दिखायी पड़ेगा; मिट्टी दिखायी पड़ेगी। भक्त ने वहां भगवान को आरोपित कर लिया है। और जब परिपूर्ण हृदय से पुकारा जाता है, तो मिट्टी भी उसी की है। मिट्टी उससे खाली तो नहीं। पत्थर उसके बाहर तो नहीं। वह वहां छिपा ही पड़ा है। जब कोई हृदय से पुकारता है तो उसका आविर्भाव हो जाता है।

इसलिए भक्त जो देखता है मूर्ति में, तुम जल्दी मत करना, तुम नहीं देख सकते। देखने के लिए भक्त की आंखें चाहिए।

'बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

इजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है।'

पत्थर रोते हैं हजारों साल, तब कहीं कोई पत्थर में परमात्मा को देखनेवाला पैदा होता है।

(प्रवचन - 18)

गुरु से मिले राम-रतन-धन!

गुरु तैजे गोबिंदो, भौजे केहो पाय नाको निस्तार।
पौरो कालेर कार्जो किछू हौय नाको तार।।
जे जौन गुरु चेने ना, हौय भौजोनहीन डौहोर–काना,
होलेओ खाशेर प्रोजा, आखेरे पाय ना निस्तार।
गुरु औमूल्यो रौतोन, गुरु बाक्यो मूल भौजोन,
गुरु कृष्ण, गुरु बोष्णब, गुरु नित्योधौन
गुरुर चौरोन कोरे शौरोन, हौबि औकूल भौबोशिन्धू पार।।
जे जौन गुरुके भूले, मुखे होरिं–होरिं बौले,
तारा गाछेर गोड़ा केटे आगाय जौल ढाले।
तोर देहो जोमिने गुरु दैय बिछौन बूने,
दीक्खा गुरु, शिक्खा–गुरु बिने, तोर आबादेर हौय ना उपोकार।।
उपोदेशे गोल जोदिं रौय, शुधु गोले होरिं बोल्ले किं हौय
गोसांई खैपाचाँद कौय, गुरु बिने घोर तूफाने हौबि नाको पार।

जो व्यक्ति गुरु को छोड़ गोविंद के नाम में डूबता है वो पार नहीं पा सकता। गुरु के बिना गोविंद को जाना नहीं जा सकता। जो गुरु को नहीं पहचान पाता वो साधन–भजन हीन काना है। वो कितना भी किसी का खास हो लेकिन गुरु बिना वो पार नहीं पा सकता।

गुरु ही वह राम–रतन–धन स्वरूप है। गुरु ही वाकई भजन है। गुरु में ही सकल देवी–देवताओं का स्वरूप विद्यमान है। गुरुचरण सुमिरन करके सागर पार किया जा सकता है।

जो लोग गुरु को भूलकर केवल हरिं–हरिं रटते हैं वे नहीं जानते कि मूल को जानने से ही पूरा वृक्ष जाना जा सकता है। मूल में रस लिये बिना डालियाँ पकड़कर फसल नहीं उगाया जा सकता।

गुरु ही दीक्षा–शिक्षा के दाता हैं। उनके बिना सब उपदेश व्यर्थ है। गोसांई खेपा (पागल) चाँद कहते हैं कि गुरु ही तूफान में नाव को पार लगाते हैं।

गुरु तैजे गोबिंदो, भौजे केहो पाय नाको निस्तार।

परमात्मा के बारे में दो मान्यताएं हैं– एक स्रष्टा के रूप में। परमात्मा स्रष्टा है और

आरंभ से ही है और दूसरा हमारे चैतन्य की पूर्ण खिलावट के रूप में और यह अनुभूति संतों की अनुभूति है कि परमात्मा हमारी खिलावट है, परमात्मा हमारे चैतन्य की खिलावट है। अंत से आरंभ नहीं किया जा सकता, गुरु को छोड़कर गोविंद के भजन से शुरूआत संभव नहीं है। अगर हमें शब्द सीखना है तो अ ब स द से शुरू करना होगा, अंतिम अक्षरों से शुरूआत संभव नहीं है। ऐसे ही गुरु से शुरूआत होती है, गोविंद से शुरूआत नहीं होती। ऐसा समझें कि अगर हमें पेड़ को बड़ा करना है तो पेड़ की जड़ों में पानी डालना होगा। पहले जड़ आती है, उसके बाद पेड़ और उसके बाद फूल। गोविंद तो फूल है, गुरु हमारी जड़ है। गुरु में हमें रस देना होगा, हमारे जीवन की जो ऊर्जा है उसको गुरु के चरणों में समर्पित करनी होगी।

माआत्से तुंग के जीवन की एक घटना याद आती है। उसकी मां ने बहुत सुंदर बगिया लगाई है और तरह-तरह के सुंदर-सुदर पेड़ और फूल हैं उस बगिया में। दूर-दूर से उस बगिया के फूलों को देखने के लिए लोग आते हैं। एक बार उसकी मां बीमार हो गई और इलाज के लिए मां को गांव से बाहर जाना पड़ा। जाते समय मां की आंखों में आंसू देखकर माओ ने कहा कि मां तुम इतनी उदास क्यों हो? मां ने कहा कि इस बगिया को छोड़कर जा रहा हूं, पता नहीं इसका क्या होगा? कैसे देख-रेख होगी? माओ ने कहा कि मां फिक्र क्यों करती हो, मैं इसकी पूरी देख-रेख करूंगा और इस बगिया को कुछ नहीं होने दूंगा। अब मां निश्चिंत होकर चली गई। माओ ने खूब देख-रेख की बगिया की, एक-एक फूल के पास जाता और उसे चूमता, हाथों से उसकी धूल झाड़ता, एक-एक पत्तियों को गीले कपड़े से पोंछता, बहुत साफ-सुथरा रखता। एक-एक पेड़ को अपने गले लगाता और पूरा प्रेम बरसाया उन पर लेकिन देखता गया कि दिनों-दिनों फूल सूखते जा रहे हैं, सारे पेड़ सूख गए। जैसे ही उसकी मां लौटी तो माओ मां से मिलकर बहुत रोया और बोला कि मां! मैं बगिया की रक्षा नहीं कर पाया, हालांकि मैंने अपने जीवन की पूरी ऊर्जा इसी में लगा दी, बहुत देख-रेख की बगिया की। मां ने पूछा कि क्या-क्या किया तूने? उसने बताया कि मैंने एक-एक फूल को चूमा, एक-एक पत्तियों को धोया और एक-एक पेड़ को गले लगाया लेकिन फिर भी पेड़ सूख गए। मां हंसने लगी और बोली कि पागल, पत्तियों से बात नहीं बनती, फूलों को प्यार करने से बात नहीं बनती, जड़ों में पानी देना होता है तब जाकर बगिया सलामत रह सकती थी। डालियों को पकड़कर फसल उगाना संभव नहीं है। ऐसे ही गोविंद को सीधे भजना संभव नहीं है। गुरु ही बताएगा गोविंद को पाने की विधि। गुरु माली है और माली के बिना फूल की खिलावट हो ही नहीं

सकती। माली जब इस जीवन की बगिया में आता है तो गोविंद का फूल खिल जाता है।

सहजो बाई कहतीं हैं–

राम तजूं पै गुरु न बिसारूं।

गुरु के सम हरि को न निहारू।।

हरि ने मोसूं आप छिपायो।

गुरु दीपक दै ताहिं दिखायो।।

हरि ने तो स्वयं को छुपा लिया हमसे, गुरु ने अपने दीपक की रोशनी दी और उस रोशनी से परमात्मा के दर्शन हुए। आइए, सुनते हैं इस बारे में परमगुरु ओशो जी क्या कहते हैं–

'राम तजूं पै गुरु न बिसारूं। यह सिर्फ स्त्री ही कह सकती है। क्योंकि राम तो दूर की धारणा है, कौन जाने, हो न हो? किसने देखा? राम वहां आकाश में हैं भी या नहीं? तो राम को हम छोड़ सकते हैं, निराकार को छोड़ सकते हैं, पर गुरु को नहीं छोड़ सकते हैं। गुरु तो आकार में है, यहां मौजूद है– छुआ जा सकता है, देखा जा सकता है, उसके शरीर की गंध मिलती है, उसकी आंख से आंख में झांका जा सकता है, उसके हाथ को हाथ में लिया जा सकता है, उसके पैर दबाये जा सकते हैं– उससे हमारा कोई सेतु है, वह यथार्थ है। राम तजूं पै गुरु न बिसारूं– बड़ी हिम्मत की बात है, सिर्फ स्त्री कह सकती है। फरीद भी थोड़े कंपेंगे, कबीर भी थोड़े डरेंगे; वे कहेंगे राम तजूं? अगर इस बात को भी कहेंगे, तो किसी और ढंग से कहेंगे, इतना सीधा न कह सकेंगे। स्त्री दो–टूक है। वह ज्यादा लंबे–चौड़े वक्तव्यों में, और गोल–गोल वक्तव्यों में नहीं उलझती। वह सीधी बात कह देती है। तर्क का वहां जाल नहीं है, वहां हृदय की सीधी अभिव्यक्ति है; फिर राम को बुरा लगेगा या नहीं, यह भी सवाल नहीं है।

राम तजूं पै गुरु न बिसारूं, गुरु को सम हरि को निहारूं। न, गुरु के मुकाबले अब हरि को न निहार सकूंगी। गजब की बात है। परमात्मा को भी, सहजो कह रही है कि मैं गुरु के मुकाबले न रख सकूंगी, इसी सिंहासन पर तुम्हें न बिठा सकूंगी। तुम होओगे भले, तुम होओगे सुंदर, तुम्हीं ने बनाया होगा संसार, माना। लेकिन गुरु के मुकाबले तुम्हें न बिठा सकूंगी। गुरु परमात्मा के ऊपर। पुरुषों ने भी हिम्मत की है, तो ज्यादा से ज्यादा गुरु को परमात्मा के करीब ला सकते हैं, उससे ऊपर नहीं ले जा सके। कबीर ने कहा है; गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाय! सवाल उठ गया है, किसके पैर छुऊं, दोनों सामने खड़े हैं! बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दीयो बताय– तो मैं गुरु के पैर लगता हूं। लेकिन कारण

क्या है पैर लगने का? क्योंकि, तुम्हारी बलिहारी तुमने गोविंद को बता दिया। असली बात तो गोविंद है। पैर गुरु के लग रहे हैं वो लेकिन बताने का...। पैर लगने का कारण क्या है? कारण यह है कि तुमने गोविंद बता दिया, तुम्हारे बिना गोविंद का पता न चलता, इसलिए तुम्हारे पैर छूते हैं। तुम साधन हो, गोविंद साध्य हैं। ऐसे पैर तो उन्होंने गुरु के हीं लगे लेकिन इशारा साफ कर दिया कि गोविंद गुरु के ऊपर है। बड़ी होश्यिारी की कबीर ने, बड़ी राजनीति की दोनों को राजी कर लिया, गुरु के पैर लग गए और कह दिया कि तुने गोविंद को बताया इसलिए तेरे पैर लगते हैं। सहजो जो कह सकती हैं वह कबीर न कह सके। गुरु के सम हरि को न निहारूं, मैं तुम्हें रख सकती हूं पूजा में लेकिन गुरु के समान नहीं रख सकती, तुम्हें भी उसी सिंहासन पर न बैठा सकूंगी।'

जे जौन गुरु चेने ना, हौय भौजोनहीन डौहोर–काना,
होलेओ खाशेर प्रोजा, आखेरे पाय ना निस्तार।

जो गुरु को नहीं पहचान सकता वह काना है, हमें संसार तो नजर आता है लेकिन हमें स्वयं की सत्ता नजर नहीं आती। इसलिए बाउल फकीर कह रहे हैं कि हम काने हैं क्योंकि हमें स्वयं की सत्ता नजर नहीं आती, हमें संसार नजर आता है, हमें परमात्मा नजर नहीं आता। हमें रूप नजर आता है, हमें शरीर नजर आता है, आत्मा नजर नहीं आती इसलिए हम काने हैं। जो अहंकार में जीता है वह गुरु को नहीं पहचानता, अहंकारी व्यक्ति किसी को अपने से ऊपर मान ही नहीं सकता, अहंकारी व्यक्ति किसी से सीखने को राजी ही नहीं है, कोई हमसे श्रेष्ठ है यह मानने को राजी ही नहीं। तरह–तरह के बहाने खोजेगा, अब कलयुग में गुरु कहां हैं। हम तो जीसस को मानते हैं तो क्या जीसस की तरह कोई गुरु आएगा? अब दूसरा जीसस पैदा नहीं हो सकता। हम मोहम्मद को मानते हैं लेकिन दूसरी बार मोहम्मद पैदा नहीं हो सकते। हम राम को मानते हैं लेकिन दूसरी बार अब राम पैदा नहीं हो सकते। हां, राम चेतना फिर से दूसरा नया रूप लेकर आएगी, कृष्ण की चेतना भी दूसरा रूप लेकर आएगी, बार–बार अस्तित्व अलग–अलग तरह से सबको प्रगट करेगा, अनेक–अनेक रूपों में, लेकिन उसको जानने के लिए हमें अपने अहंकार को छोड़ना होगा। हमने अपने अहंकार को पास्ट से बांध लिया है, पास्ट में जो गुरु हुए हैं उनका अगर कोई अनुकरण करे तो हमें गुरु लगेगा। लेकिन जो जागरूक है वह किसी का अनुकरण नहीं करेगा, वह तो यूनीक होगा, वह तो अपने जैसा होगा, हर गुरु अपने जैसा होगा और हम किसी और की तरह उसको आंकते हैं, हम अपनी धारणाओं से गुरु को आंकते हैं। क्योंकि हमारा अहंकार मानने को राजी ही नहीं होता और तरह–तरह के

बहाने खोजता है।

गुरु औमूल्यो रौतोन, गुरु बाक्यो मूल भौजोन,

गुरु कृष्ण, गुरु बोष्णब, गुरु नित्योधौन

गुरुर चौरोन कोरे शौरोन, हौबि औकूल भौबोशिन्धू पार।।

गुरु रामरतन धन है और गुरु का जो वाक्य है वहीं भजन है, गुरु का एक–एक वाक्य भजन है जींवन का और गुरु हमारा अमूल्य रतन धन है और गुरु हीं कृष्ण है, गुरु हीं विष्णु है, गुरु हीं त्रिमूर्ति है, गुरु हीं शिव है, गुरु हीं ब्रह्मा है। गुरु की उपस्थिति में हम द्विज हो जाते हैं, हमारा पुनर्जन्म होता है, हम अपनीं आत्मा को फिर से जन्म देते हैं गुरु की उपस्थिति में इसलिए गुरु ब्रह्म है। गुरु के कारण हमारा दूसरा जन्म हुआ, हमारी आत्मा का जन्म हुआ। अब ये जो हमारे वास्तविक स्वरुप का जन्म हो गया, अब जो हमारीं आत्मसत्ता का जन्म हो गया अब इसका पालन करो, ये कैसे बनीं रहे, विष्णु इसे बचाकर रखता है। जिसने गुरु के चरण में समर्पण कर दिया वहीं इस भवसागर से पार हो सकता है।

संसार समुंदे पार गोविंदे।

उपोदेशे गोल जोदिं रौय, शुधु गोले होरिं बोल्ले कि हौय

हमारी यात्रा के तींन पथ हैं। पहला पथ है जिसे हम बुद्धि से तय करते हैं वह है अहंकार का पथ। दूसरा है परमब्रह्म का पथ, ओंकार का पथ। ये दोनों पथ समानान्तर जाते हैं, इन दोनों का मिलन कभी नहीं होता। एक तींसरीं गलीं है जो इन दोनों पथों को जोड़तीं है वह है गुरु का पथ। जब हम अहंकार को छोड़कर गुरु के पास आते हैं, गुरु से जुड़ते हैं यह तींसरा पथ हो जाता है। और तभीं जाकर गोविंद से मिलन होता है। जब हम गुरु कीं नदीं में अपने जींवन कीं नाव को छोड़ देते हैं तब गोविंद के सागर में हमारे जींवन कीं नाव पहुंच पातीं है।

(प्रवचन – 19)

अकर्ताभाव है मुक्ति-द्वार!

जानगे मानुषेर कौरोन की शे हौय।
भूलो ना मोन बोइदिक भोले रागेर धौरे रौय।
भार्टिर शोत जार फेरे उजान ताइते कि हौय। मानुषेर कौरोन।
पौरोशौन ना होले मोन दौरोशोन कि पाय।।
टौलाटौल कौरोन जाहार स्पौरशोगुन। कोई मेले ताहार।
गुरु– शिष्यो जुग– जूपान्तौर फॉके– फॉके रौय।।
लोहा शौर्नो पौरोश– पौरोशे मानुषेर कौरोन तेम्नी शे।
रचनाकार–लालन शाह

रे मनवा! मनुष्य का उचित कर्म क्या है जान ले। वैदिक कर्मकाण्ड से उसे नहीं पाया जा सकता। अनुराग– भक्ति के घर में हीं उसका वास है।

ज्वार–भाटा में लहरें जैसीं आतीं– जातीं हैं उस प्रकार ऊर्जा के ऊपर– नींचे होने से क्या होता है मन! मन को पारस कीं तरह करना होता है, नहीं तो उसकीं अनुभूति प्राप्त नहीं कर सकते, न हीं उसके दर्शन होते है।

जिसका कर्म हीं टालमटोल वाला हो वह स्पर्श– गुण कैसे प्राप्त करेगा। गुरु शिष्य को जैसे प्रेम– भक्ति द्वारा परम– स्पर्श गुण से उस पारस से परिचय करवाता है। वह तो मूल तक समाया है।

लोहा जैसे पारस के स्पर्श से स्वर्ण बन जाता है ठींक उसीं प्रकार मनुष्य करम भीं होना चाहिए कि गुरु हीं उस परम– पारस ओंकार से परिचय करवाता है लालन संत कहते हैं तेरीं दिशा भीं वैसीं होनीं चाहिए तभीं तेरीं सकल यंत्रणा दूर हो जायेगीं गुरु के स्पर्श से कँचन जैसा हो जायेगा।

जानगे मानुषेर कौरोन कीं शे हौय।
भूलो ना मोन बोइदिक भोले रागेर धौरे रौय।

ऐ मेरे मन! तू जान ले कि उचित कर्म क्या है। कर्म तीन प्रकार के हैं– कर्म, विकर्म और अकर्म। एक कर्म है जो हम कर्ताभाव से करते हैं, मैंने धन कमाया, मैंने यश कमाया, मैंने घर बनाया ये कर्ताभाव से किए गए कर्म हैं। एक कर्म है जो स्वतः अपने आप हीं होते हैं। कौन करने वाले हैं–

दयारे सुबहो–शाम जिसके इशारे से, मेरीं गफलत तो देखो मैं उसे गाफिल समझता हूं।

ये सूरज निकलता है और डूबता है, चांद निकलता है और डूबता है, मौसम बदल

जाता है लेकिन ये स्वतः हो रहे हैं। ऐसे ही ह्रदय धड़क रहा है, सांस चल रही है, जीवन चल रहा है, ये हो गए विकर्म। एक है अकर्म– जब विकर्म को हम देखते हैं तो भीतर एक समझ पैदा होती है कि मैं करने वाला नहीं हूं, मेरे जीवन की बागडोर किसी और के हाथ में है, कोई है जो हमसे कर्म करवा रहा है। इस अकर्ताभाव से जब हम कर्म करते हैं तो यह अकर्म है। अकर्ताभाव से किए गए सारे कर्म अकर्म हो गए और अकर्म ही मुक्ति का द्वार है, अकर्म ही परमात्मा तक ले जाता है। कबीर साहब कहते हैं–

'कर्म कर्म सब कोइ कहे, कर्म न चीन्हे कोय।
जो मन का बंधन बनै, कर्म कहावै सोय।।
और कर्म सब कर्म है, भक्ति कर्म निहकर्म।
कहहिं कबीर पुकार कै, भक्ति करो तजि भर्म।।'

सभी कर्म–कर्म कहते हैं लेकिन कर्म की पहचान किसी को नहीं है। कर्ताभाव से अगर तुमने दान किया, पुण्य किया तो वह भी बंधन बन जाता है। अकर्ताभाव से कौन कर्म करता है? अकर्ताभाव से तो केवल भक्त ही कर्म कर सकता है। और तो सारे कर्म हैं लेकिन भक्ति अकर्ताभाव से किया गया कर्म है। एक भक्त माध्यम बन जाता है और एक भक्त कहता है कि हे प्रभु, मैं तेरी बांसुरी हूं, मैं तेरा माध्यम हूं अब तू मेरे द्वारा जो स्वर निकालना चाहे मैं राजी हूं और इस अकर्ताभाव से सारे कर्म हो जाते हैं। एक भक्त भी सबकुछ करता है और एक संसारी भी सबकुछ करता है लेकिन भक्त के लिए सब कर्म लीला, रसपूर्ण और आनंददायी हो जाते हैं और एक संसारी के लिए सारे कर्म तनाव पैदा करने वाले, बंधन बनाने वाले हो जाते हैं।

एक बार बोधिधर्म के पास सम्राट बू गए, यह चीन की कहानी है। सम्राट बू ने बोधिधर्म को प्रणाम किया और कहा कि मैंने इतने सारे धर्मशाले बनवाये, इतने मंदिर बनवाये और इतना दान किया, अब आप ये बताइए कि स्वर्ग में मेरा स्थान कहां होगा, क्या मुझे स्वर्ग मिलेगा? बोधिधर्म ने कहा कि तुम्हें तो केवल नर्क ही मिलेगा। बू तो हतप्रभ रह गया कि बोधिधर्म ने ऐसा क्यों कहा। हमने अगर ऐसा कोई भी काम किया है कि जिससे हमारा अहंकार और मजबूत हो गया है तो हमने नर्क के लिए प्रेरित कर लिया अपने आपको। अहंकार को बढ़ाने वाले सारे कर्म चाहे दान किए हों, चाहे सहायता की हो, चाहे पूजा की हो, चाहे भक्ति की हो, पूजा और भक्ति भी बंधन बन जाती है। ऐ मेरे मन! तुम वेद में मत भटक जाना। बहुत लोग परमात्मा को वेद में खोजने निकल जाते हैं। पहले तो आप ये जान लो कि हम कैसा कर्म करें जो हमें परमात्मा के पथ पर ले जाए? वह कर्म है

अकर्ताभाव से किया गया कर्म। अब तुम वेद में मत उलझ जाना, किताबों में मत उलझ जाना।

पोथि पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोई

ढाई आखर प्रेम का पढ़ा सो पंडित होय

यह जो ढाई अक्षर का शब्द प्रेम है या कह लो ध्यान है यह भी ढाई अक्षर का है। तो प्रेम भी ढाई अक्षर का और ध्यान भी ढाई अक्षर का, जो भी ध्यान में डूबा, जो प्रेम में डूबा, वहीं अकर्म में जीता है।

भूलो ना मोन बोइदिक भोले रागेर धौरे रौय।

जिसने भी परमात्मा को पाया उसने वेद में नहीं पाया, उसने जीवन रूपी वेद में पाया है। उसका जीवन ही एक वेद है। प्रेम, अनुराग और भक्ति के घर में उसका निवास है, अनुराग भक्ति के घर में ही उसका वास है। शास्त्रों में एक वचन है–

नारद ने विष्णु से पूछा कि प्रभु! आप तो सर्वव्यापक हैं, सर्वत्र मौजूद हैं लेकिन फिर भी आप कहीं तो रहते होंगे और आप निश्चितरूप से कहां आनंदपूर्वक रहते हैं? विष्णु ने उत्तर दिया कि मेरे भक्तों के हृदय में मैं हमेशा रसलीन होकर रहता हूं, बहुत आनंदमग्न होकर रहता हूं।

नाहम तिष्ठामि बैकुण्ठे योगी नाम रेपि च मद हत्राह यत्रि गायन्त्री तत्य तिष्ठामि नारद।

मैं बैकुण्ठ में भी उतना आनंदित नहीं रहता हूं जितना मेरे भक्तों के हृदय में रहता हूं। जहां मेरे भक्त नाचते हैं, गाते हैं, रसलीन होकर कीर्तन करते हैं, वहीं पर मौजूद रहता हूं। भक्त कहता है न– बैकुण्ठ तो यहीं है, हृदय पर रहा करना, प्रभु! हम पर कृपा करना। क्यों रहते हैं परमात्मा भक्तों के हृदय में? क्योंकि भक्त निर्अहंकारी होता है, भक्त विनम्र होता है, भक्त समर्पित है, भक्त के हृदय में एक सन्नाटा है, भक्त के हृदय में शून्यता होती है, भक्त ने अपने आपको गर्भ बना लिया है और उस खाली स्पेस में परमात्मा मौजूद होता है। जब हम भी भर जाते हैं तो परमात्मा कहां विराजमान हो। तो विष्णु कहते हैं कि जैसा मैं अपने भक्तों के हृदय में रसमग्न और रसलीन होकर रहता हूं वैसा योगियों के हृदय में भी नहीं रहता। योगी बहुत प्रयास करता है जैसे आसन, प्राणायाम, मुद्रा चिकित्सा तरह–तरह के प्रयास करता है। तो योगी के भीतर तो योगी ही रहता है तो इसलिए भगवान पूरा कैसे रह सकता है। योगी के अंदर एक सूक्ष्म अकड़, प्रयास की अकड़ पैदा हो जाती है, एक सूक्ष्म अहंकार निर्मित हो जाता है। तब परमात्मा उस जगह पर कैसे आनंदपूर्वक रह सकता है।

भाटिर शोत जार फेरे उजान ताइते कि हौय। मानुषेर कौरोन।

पौरोशौन ना होले मोन दौरोशोन कि पाय।।

जैसे ज्वार–भाटा की लहरें आतीं हैं और जातीं हैं वैसे ही ऊर्जा के उतार–चढ़ाव होने से कुछ फायदा नहीं, ऐसे में प्रभु के दर्शन होने वाले नहीं। ऊर्जा के उर्ध्वगमन से रूपांतरण थोड़ीं होगा, रूपांतरण तो प्रेम से होता है, रूपांतरण समर्पण से होता है। पारस जो है वो परमपारस है, उसकी अनुभूति गुरु करवाता है।

पारस और संत में बड़ो अंतरो जान, एक लोहा कंचन करे दूजो आप समान। अगर मन को पारस की तरह हमें करना है तो हमें संत की शरण में जाना होगा, हम जिसका भी साथ करते हैं उसी के जैसे हो जाते हैं। तो हमें पारस क्यों होना है? परमात्मा तो परमपारस है। परमात्मा से अगर मिलना है तो हमें भी परमात्मा की तरह ही होना पड़ेगा। पानी के साथ तेल को नहीं मिला सकते हो, दूध में तेल नहीं मिल सकता, रेत नहीं मिल सकती, दूध और पानी का मिलन हो सकता है। तो हमें भी परमपारस से मिलना है, गोविंद से मिलना है तो गोविंद की तरह ही होना होगा, पारस की तरह होना होगा और पारस बनने की कला गुरु ही करवा सकता है। उसकी मौजूदगी से, उसके पास बैठने से ही परिवर्तन होने लगते हैं। पलटू साहब कहते हैं–

एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात।

ब्रह्म दोष वो लेय काया को राखै जारी ।

प्रान करै आयाम कोई फ़िर मुद्रा साधै ।

धोती नेती करै कोई लै स्वासा बाँधै ।।

उनमुनि लावै ध्यान करै चौरासी आसन ।

पलटू सब परपंच है करै सो फ़िर पछिताता ।

एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात।

चहे कुछ भी कर लो, सारे प्रयास, सारे योग कर फिर भी नहीं पा सकते हो, जिस दिन सबकुछ करना छोड़ दोगे उस क्षण परमात्मा से मिलन हो जाएगा। कर्म ही टाल–मटोल करने वाला होता है।

टौलाटौल कौरोन जाहार स्पौरशोगुन। कोई मेले ताहार।

गुरु– शिष्यो जुग– जूपान्तौर फॉके– फॉके रौय।।

हमारी आदत टाल–मटोल करने की होती है, हम शुभ कर्मों को टाल देते हैं और अशुभ कर्मों को नहीं टालते। हमें क्रोध करना होता है तो हम नहीं टालते, प्रतिक्रिया करनी होती है हम नहीं टालते, लड़ाई करना है नहीं टालते लेकिन अगर हमें दान देना है तो हम

टालते हैं, प्रेम से किसी से बात करना है नहीं करते हैं, हमें क्षमा मांगना है हम टाल देते हैं। शुभ काम के लिए हमेशा मेरे पास एक्सक्यूज होता है कि अभी समय नहीं आया और अशुभ काम के लिए हमें कोई एक्सक्यूज़ नहीं दिखते, हम उसे तुरंत कर बैठते हैं। तो पलटू साहब कह रहे हैं कि जिसकी आदत टाल–मटोल की है वह स्पर्शपुंज को कैसे प्राप्त करेगा। स्पर्शपुंज यानि संवेदना। टालने की जो हमारी आदत है जीवन की, अभी नहीं बाद में, इसका मतलब हम प्रजेन्ट में जी ही नहीं रहे, हम वर्तमान में जी ही नहीं रहे। और जो वर्तमान में नहीं जी सकता उसके पास संवेदना नहीं हो सकती। वह असंवेदनशील ही रहेगा क्योंकि संवेदना के लिए हमें अभी और यहीं में आना होगा।

संवेदना ह्रदय में न होती तो ह्रदय पाषाण हो गया होता
मधुरिमा कंठ में न होती तो शब्द विषपान हो गया होता
वासना प्रेम में न होती तो प्रेम वरदान हो गया होता
याचना भक्ति में न होती तो भक्त भगवान हो गया होता।

उस संवेदना को कैसे विकसित करें हम? टालमटोल करने की जो हमारी आदत है उससे छुटकारा पाना होगा और अभी और यहीं मे जीना होगा, हमें वर्तमान में जीना सीखना होगा। प्रेम तो हम जानते हैं लेकिन भक्ति का हमारा कोई अनुभव नहीं है। जहां भी होने का अनुभव हो वह प्रेम है। जब यह होने का अनुभव समष्टि के साथ हो जाए, पूरे अस्तित्व के साथ हो जाए तो भक्ति हो गई। लेकिन जिसने प्रेम का अनुभव न किया हो वह भक्ति में नहीं जा सकता। जिसने खिड़की से बाहर न देखा हो वह कैसे बताएगा कि आसमान कैसा है। जिसने सरोवर में स्नान न किया हो वह सागर मैं कैसे स्नान कर सकता है, जिसने बूंद का अनुभव नहीं किया वह सागर का अनुभव कैसे करेगा। प्रार्थना की पहली झलक प्रेम में ही आती है और प्रेम शुरू होता है संवेदना से। अगर बीज है तो वृक्ष बनने की संभावना है ऐसे ही यदि प्रेम है तो भक्ति भी हो सकती है, प्रेम है तो प्रार्थना हो सकती है। प्रेम के लिए संवेदनशील होना होगा और संवेदनशील होने के लिए हमें वर्तमान में जीना सीखना होगा।